'परस्परं भावयन्त श्रेयः परमवाप्स्यथ'

श्रेय

र्ष ४ अंक २ ★ ★ अषाढ़ २०३० विक्रमी

सम्पादक
डा० रामदत्त भारद्वाज—डा० मोहनलाल श्रीवास्तव

सौन्दर्यं साहितीर्नां जगति भरतभूनिर्मितानाँ नितांतं ।
भूयात् सञ्चारयन्ती प्रयतमतिरियं पत्रिका विश्ववन्द्या ।।
पन्थानं दर्शयन्ती स्वरमधुरिमापूरितं श्रेयसः स्व ।
श्रेयोनाम्ना प्रसिद्धा गमयतु सुयशःसाहितीकारसंघम् ।।

आचार्य अमृतवाग्भव

★ ★ ★

अंक १ आषाढ़ २०३० वि० वर्ष ४ मूल्य २·५० प्रति—१०·०० वार्षिक

सदस्यों को निःशुल्क

★ ★ ★

संपादक

डा० रामदत्त भारद्वाज

डा० मोहनलाल श्रीवास्तव

कार्यालय ५१/१ न्यू मार्केट, करोलबाग, नई दिल्ली–५ ।

दूरभाष : ५६५७०७

आचार्य अमृतवाग्भव

जन्म :—आषाढ़ शुक्ल, सूर्यास्त व्यापिनी दशमी

श्रद्धेय आचार्य प्रवर का जन्मदिन आषाढ़ शुक्ल, सूर्यास्त व्यापिनी दशमी (९ जुलाई, १९७३) को सुहाना में आचार्य जी के श्रद्धालुओं और शिष्यों ने धूमधाम से मनाया। भारतीय साहित्यकार संघ के सदस्यों की ओर से सम्मान्य अध्यक्ष आचार्य अमृतवाग्भव को शुभ-कामना भेजी गई। निम्नलिखित पंक्तियां उसी के साथ भेजी गई थीं—

शंकर अमृत जीवन, अभिनव वाक मनोहर
धवल अमल स्वर गंगा विलसित नाद सहोदर
पूर्ण सरस शुक्लांकित, नित्य सुखदप्रिय सावन।
सुलभ, सुयोग, सुहावन, शत प्रणाम मनभावन।

— **मोहनलाल श्रीवास्तव**

स्व० पं० भगवद्दत्तजी

स्व० पं० भगवद्दत्त जी ने वैदिक वाङ्मय और भारतीय संस्कृति के लिए जो कार्य किया वह किसी से छिपा नहीं है। उनकी अन्तिम कृति "The Story of Creation" भारतीय विज्ञान की अद्भुत पुस्तक है। उन्होंने जीवन पर्यन्त पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्राच्य विद्या के माध्यम से भारतीय संस्कृति की संरचना पर किये गए आघातों के प्रति बुद्धिजीवियों को सचेत किया। खेद है कि न तो उनके जीते जी ही उनका यथोचित सम्मान हुआ और न उनकी मृत्यु के पश्चात्। उनके सम्मान के लिए एक बार भारतीय साहित्यकार संघ ने योजना बनाई जिसके अध्यक्ष श्री गुरुदत्तजी थे। लेकिन वह क्रियान्वित न हो सकी और वे हम से दूर हो गए। हम उन्हें भारतीय साहित्यकार संघ की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हमारी इच्छा है कि ऐसे मनीषी के लिए कुछ कार्य अवश्य हो। उनके सहृदयों और प्रेमी विद्वानों से सुझाव प्रार्थित हैं।

अन्तर्वस्तु

सम्पादकीय

"साहित्यकार का दायित्व" और "साहित्यकार एवं समाज" पर टिप्पणी प्रायः होती रहती है। अनेक वार इन पर परिचर्चा और विचारगोष्ठी का आयोजन भी हुआ है। साहित्यकार की स्थिति और समाज के प्रति उसकी प्रामाणिक दृष्टि के सम्बन्ध में जो चिन्तन उभरा उसके मुख्यतः दो धरातल हैं, एक समाजपरक और दूसरा व्यक्तिपरक। दोनों का सामंजस्य यदि धर्मगत न होकर दलगत हुआ तो वह टूट सकता है क्योंकि धर्म है शाश्वत परन्तु दल परिवर्तनशील है। अतः आज के व्यंग्यकारों, हास्यकारों, युग बोधकों और सुधारकों की स्थिति चिन्ताजनक है। सोचने की बात यह है कि जिन स्थितियों और परिस्थितियों के लिए वे अपने अनुभूत को मुखर करते हैं क्या वे अपने स्वर की प्रामाणिकता को अपने जीवन में उतार रहे हैं? कवियों, लेखकों तथा अन्य कलाकारों में ईर्ष्या, स्वार्थ-साधना राजनीतिजन्य तत्परता और अर्थ-लोभ को देखकर यही कहना पड़ेगा कि उनका अन्य पर नहीं, उन्हीं पर व्यंग्य है।

वर्तमान असहिष्णुता, कामुकता, स्वार्थान्धता आदि के लिए और कोई नहीं, वेही बुद्धिजीवी जिम्मेदार हैं जिन्होंने समाज और व्यक्ति के सामंजस्य को स्वार्थगत स्वीकार किया और छिछली राजनीति और उसके व्यवसाय को महत्व दिया। इसीलिए यह सामंजस्य टूट गया और इसी टूटन का परिणाम है, व्यंग्यकारों की बाढ़। यदि चिंतन के क्षेत्र में व्यक्ति और समाज का धर्मगत सामंजस्य होता तो इस युग को सशक्त वाणी का उद्भावक अवश्य मिलता। धर्म है सत्य का अनुष्ठान और असत्य का परित्याग। सत्य उसे नहीं कहेंगे जो स्वयं को ही छले। सत्य का तो स्वरूप अन्तर्बाह्य एक है।

सन्देश

श्रेयोभिधाना पत्रिका दृष्टिपथं गता। पुरातत्वाग्रहग्रहिलैः भारतीय संस्कृतिस्नेहानुबद्धहृदयैः विद्वद्भिः लोके संस्कृति-संरक्षणाय महता प्रयत्नेन प्रस्तूयते पत्रिकेयम् इति अनुमीयते। आशासे तत्र भवतां भवतां सर्वजनीन परिश्रमः सफलीभूथ परिशीलन शीलेभ्यः श्रेयो दद्यात्।

व्याकरणायुर्वेदाचार्यः पं० रामचन्द्र शास्त्री
वी. के. वागीशः, काव्यालंकारः,
प्रधानाचार्यः श्री मोहता संस्कृत विद्यालयः
सादूलपुर (राजस्थान)-१

"श्रेय" का चतुर्थ अंक मिला, साधु। पत्रिका प्रबुद्धजनों के उपादेय सामग्री सम्भार से समृद्ध प्रतीत हुई। अतः पुनः साधु। अपने ध्येय एवं स्तर को भविष्य में स्थायी रखें—आधुनिक घासलेटी साहित्य का प्रवेश न होने दें। पत्रिकार्थ इस कामना के साथ उत्तरोत्तर इसकी अभिवृद्धि का आकांक्षी—

—श्रीनिवास शास्त्री,
१६१/१ म० गाँधी रोड, कलकत्ता--७

भावये परशिवं शिवायुतम्

आचार्य अमृतवाग्भव

जाह्नवीजलतुषारसङ्गिना
पावनेन पवनेन पावितः ।
प्रापिताऽखिलशुभो जनावनं
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥१॥

एकतो भसितभासुराङ्ककं,
वालभानुशतकान्तिमेकतः ।
वालचन्द्रकलिकाञ्चितालिकं,
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥२॥

दुष्कृतानि निखिलानि दूरतः,
साम्प्रतं परिगतानि सन्ति मे ।
निर्मलीकृतवपुः स्वमानसे,
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥३॥

साम्प्रतं दलितसर्ववासनो,
बद्धसौख्यकरपङ्कजासनः ।
नासिकाग्रमवलोकयन्मुदा,
भावये परशिवं शिवायुतम् ॥४॥

मीलिताक्षिगलदश्रुधारया,
गद्गदाक्षरपदैः स्तुवन्गिरा।
भक्तपालनकरं दयानिधिं,
भावये परशिवं शिवायुतम् ।।५।।

दीनानाथ! भगवन! दयानिधे!
पाहि पाहि शरणागतं प्रभो! ।
क्षम्यतां मयि शिवेति चारटन्
भावये परशिवं शिवायुतं ।।६।।

नाथ! सम्प्रति दयार्द्रचक्षुषा
पश्य मां झटिति दीनजीवितम् ।
मन्तुमन्तमपि रक्ष आरटन्
भावये परशिवं शिवायुतम् ।।७।।

शर्व ! सर्वजनशर्मकारणं
प्रापयत्वमधुना निजान्तिकम् ।
एवमेव सततं रटन्नहं
भावये परशिवं शिवायुतम् ।।८।।

षड्ज धान्यमित वैक्रमेऽब्दके ।
शुक्रशुक्लदशमीतिथौ रवौ ।।
स्वर्धुनीतटनिवासिना मुदा ।
निर्मितं परशिवाष्टकं शुभम् ।।।९।।

स्तुवन्शिवं शिवायुक्तं क्रीड़न्नात्मन्यनारतम् ।।
विमृशन्स्वं स्वप्रकाशं विद्वानमृतवाग्भवः ।।१०।।

त्रिवेणीघट्टसोपाने उपविश्याम्बुजासने ।
गङ्गातीरे हृषीकेशे निरमात्स्तोत्रमुत्तमम् ।।११।।

भारतीय सौन्दर्य-कल्पना

डा० रामदत्त भारद्वाज

सौन्दर्य-स्वरूप के सम्वन्ध में जितनी चर्चा पश्चिम में हुई है उतनी पूर्व में नही। वहाँ सौन्दर्य की मीमाँसा, शास्त्र के रूप में हुई है, यों यहाँ भी सौन्दर्य के वर्णन-बाहुल्य का अभाव नहीं।

वात्स्यायन ने 'काम सूत्रम्' में द्विविध चतुष्षष्टि कलाओं की चर्चा, और वामनाचार्य ने 'कला' की निरुक्ति की है: कल-शास्त्रेभ्य: कला-तत्त्वस्य संवित्। राजशेखर ने भी चतु:षष्टिरूप विद्याओं की चर्चा चलाई है। दण्डी के अनुसार, 'अलंकार तो काव्य के शोभाकारी गुण होते है: काव्यशोभाकारान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते। वामनाचार्य ने सौन्दर्य को अलंकार माना और अलंकार के कारण ही काव्य को ग्राह्य समझा: सौन्दर्यमलङ्कार:, काव्यं ग्राह्य-मलङ्कारात्। विश्वनाथ ने ऐसे आह्लाद को 'माधुर्य' बताया है जो चित्त को द्रवित करे: चित्त द्रवीभावमयोऽऽह्लादो माधुर्यमुच्यते (सा० द० ८-२) शिवता और सुन्दरता का अटूट सम्बन्ध है, कालिदास की उक्ति है:

यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये।
न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच:॥ कु० सं० ५-३६

इस महाकवि ने सौन्दर्य के प्रभाव को 'पर्युत्सुकता' अथवा 'समुत्सुकता' बताया है:

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्।
पर्युत्सुकी भवति यत् सुखितोपि जन्तु:॥ अ० शा० ५·२

त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत् ।
सखीजनस्ते किमुदार्द्र सौहृदः ।।विक्रम० १·११

महाकवि माघ के अनुसार, सौन्दर्य का प्रभाव 'विस्मय' होता है और 'रमणीयता' वह है जो क्षण-क्षण में नवीन प्रतीत हो :

दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुहुर्मुरारेर् ।
अपूर्ववद् विस्मयमाततान ।
क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति ।
तदेव रूपं रमणीयतायाः ।। शि० व० ४·१७

रूप गोस्वामी ने सौन्दर्य को अंगों का यथोचित संघटन माना है :

भवेत् सौन्दर्यमङ्गानाँ संनिवेशो यथोचितम् ।।
भ० र० सिं० २·१ १३३

या यों कहें कि उन्होंने अङ्ग-प्रत्यङ्गों के संन्निवेश को सौन्दर्य समझा है :

अंग प्रत्यंगकानाँ यः सन्निवेशो यथोचितम् ।
सुश्लिष्ट सन्धिबन्धः स्यात् तत्सौन्दर्यमितीर्यते । उ० वी १०२६

उनके अनुसार 'रुचिर' वह सुन्दरता है जिससे नेत्रों को आनन्द मिले । तेज दो प्रकार का होता है—धाम और प्रभाव :

सौन्दर्येण दृगानन्दकारी रुचिर उच्यते ।
तेजोधाम प्रभावश्चेत्युच्यते द्विविधं बुधैः ।। भ०र०सिं० २·१·३९

दीप्ति-राशि को 'धाम' और सर्वजित स्थिति को 'प्रभाव' कहते हैं :

दीप्तिराशिर्भवेद् धाम, प्रभावः सर्वजित् स्थितिः ।। वही २·१·४०

'रूप' वह है जिससे अलंकार स्वयं भूषित हों :

विभूषणं विभूष्य स्याद् येन तद्रूपमुच्यते ।। वही २·१·१३३

'लावण्य' है मोती की तरल शोभा के समान शारीरिक कान्ति :

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्यं तदिहोच्यते ।। उ० नी० १०·२६

'लालित्य' है प्रचुर शृंगारिक चेष्टाओं का समावेश :

शृंगार-प्रचुर चेष्टा यत्र तं ललितं विदुः ।। भ० र० सिं २·१· ९८

और 'माधुर्य' है क्रिया-कलापों में स्पृहणीयता ।

तन्माधुर्यं भवेद्यत्र चेष्टाऽऽदेः स्पृहणीयता ।। वही ३·१·९६

संस्कृत की एक उक्ति है जो 'सौन्दर्य' की व्यक्तिपरता का निर्देश करती है :

दधि मधुरं मधु मधुरं, द्राक्षा मधुरा सिता तु मधुरैव ।
तस्य तदेव हि मधुरं, यस्य मनो यत्र संलग्नम् ।।

हिन्दी के मध्यकालीन कवियों में उल्लेखनीय हैं, बिहारी, मतिराम तुलसीदास और सूरदास । बिहारी ने सौन्दर्य की उभय निष्ठा पर प्रकाश डाला है :

समै-समै सुन्दरसबै, रूप कुरूप न कोइ ।
मन को रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ।।
लिख बैठी जाकी छबी, गहि-गहि गरब गरूर
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।

मतिराम ने सौन्दर्य के प्रभाव को अद्भुत माना है :

सहज सुरूप सुघराई रीझो मन मेरो ।
डोलत है तेरी अद्भुत की तरंग में ।।

गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् में समग्र सौन्दर्य का दर्शन किया है, यथा :

शंकरं शं प्रदं सज्जनानन्ददं, शैल कन्यावरं परं रम्यम् ।
काम-मदमोचनं, तामरसलोचनं, कामदेवं भजे भाव गम्यम् ।
कंबु कुंदेन्दु-कर्पूरगौरं शिवं सुन्दरं सच्चिदानन्द कन्दम् ।
सिद्ध-सनकादि-योगीन्द्र-वृन्दारका-बिष्णु-विधि-वंद्य चरणारविन्दम् ।

गोस्वामी के अनुसार सौन्दर्य अनिर्वचनीय है, क्योंकि :

गिरा अनयन नयन बिनु वानी । रा० १· २२८· १

इसी कारण उन्होंने राम-लक्ष्मण की शोभा का वर्णन करने में अपने को प्रायः असमर्थ पाया है, यथा—

देखन बागु कुअँर दुइ आए, वय किशोर सब भाँति सुहाए ।
स्याम गौर किमि कहौं बखानी । रा० १· २२८· १

सूरदास भी श्रीकृष्ण की शोभा का बर्णन करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं :

सेस ना कहि सकत सोभा, जान जो अति उक्त ।। सा० ल० ९३

राधा का स्वरूप भी अनिर्वचनीय है :

यह अद्भुत कहिबे न जोग जुग देखत ही वनि आवै : सा० ल० ४

शब्दों द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के निमित्त अनेक पर्यायों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें से कुछ तो ऐसे हैं जिनकी व्युत्पत्ति अथवा निरुक्ति सौन्दर्य-परक अर्थ को सुस्पष्ट करने का प्रयास करती है। अंग-प्रत्यंगों की शोभा को चित्रित करने के लिए अनेक उपमाओं का प्रयोग किया जाता है, इस विषय में द्रष्टव्य है विद्यापति का पद—'साजनि अकथ कहि न जाए। अबल अरुण ससिक मंडल.........लखिमा देवि रमान' (पदावली ६४-१८३) सूरदास का पद, 'अद्‌भुत एक अनूपम बाग' (२७२८) और तुलसीदास की चौपाइयां, हे खग, मृग, हे मधुकर......हरषे सकल पाइ जनु राजू (रा० ३-२९ ख. ५-७) तथापि शब्दों के माध्यम से सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उतनी सन्तोषप्रद नहीं हो पाती जितनी चित्र या शिल्प के द्वारा।

मेरी कल्पना है कि सौन्दर्य है दिगाकर्षण, अर्थात वह आकाश जो आकृष्ट करता है। उदात्त-सौन्दर्यजन्य हमारे प्रत्यक्ष का तात्कालिक परिणाम है 'विस्मय (wonder) और यह विस्मय जैसे-जैसे शान्त होता जाता है वेसे-वैसे हम सौन्दर्य का अनुसंधान करने लगते हैं। इस अनुसन्धान के साथ सुखानुभूति होती है। किन्तु साधारण अथवा परिचित सुन्दर पदार्थ के प्रत्यक्ष में, हमारी अनुभूति में पलायनशील अनुकूल वेदन का तत्व अवश्य रहता है। मैं ऐसा समझता हूं कि हमें संगीत को सुन्दर या मधुर नहीं कहना चाहिए, भाषा-दारिद्रय की मजबूरी से उचित अभिव्यक्ति के साधक शब्द न मिल सकें तो बात दूसरी है, क्योंकि ये गुण तो रूप, रस और स्पर्श के हैं। स्थापत्य, शिल्प और चित्र तो प्रतिनिधि कलाएँ हैं और सह-अस्तित्व (Co-existence) के विचार से सम्बद्ध भी, किन्तु संगीत प्रतिनिधि कला नहीं है, उसका सम्बन्ध अनुक्रम अथवा पौर्वापर्य (succession) से है। काव्य अंशतः प्रतिनिधि है और अंशत. नहीं भी, क्योंकि वह सौन्दर्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार सुचारु रूप से नहीं कर सकता जैसे चाक्षुष कलाएँ। मैंने अपने एक लेख में[1] प्रेम को भी आकर्षण का एक रूप बताया है। तो सौन्दर्य और प्रेम में क्या अन्तर है? सौन्दर्य, जैसाकि मैं ऊपर कह चुका हूं, दिगाकर्षण है, परन्तु प्रेम कालाकर्षण है जोकि, प्रेमी-प्रेयसी की सम्पृक्ति से, प्रेमी-प्रेयसी के रूप में, काल

1. प्रेम : एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सम्मेलन पत्रिका चैत्र-भाद्रपद १८८६ शक।

की दीर्घता से सघन होता रहता है। सौन्दर्य के साथ सम्पर्क (Contact) संसक्ति (association) के कारण, अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या आदि में परिणत हो सकता है। उपर्युक्त सम्पर्क के पश्चात् यह ज्ञान कि अमुक सुन्दरी शत्रु की पत्नी है, सुखमय द्वेष आदि की मिश्रित भावना या किसी अन्य इच्छा को जागरित कर सकता है। मेरी समझ में, सौन्दर्यानुभूति विषयिगत एवं विषयगत दोनों ही है और विषय सुन्दरता को प्रकाशित करता है। विषयि-विषय अथवा प्रमाता-प्रमेय, किंवा पुरुष-प्रकृति के प्रत्यक्षतः विरोधी तत्वों का संघ सम्भव है और इसलिए वे हिमजल की भाँति ईश्वरेच्छा के दो रूप हैं।

* *

साहित्य, सत्य और सौन्दर्य

सौन्दर्य की व्याख्या शास्त्र करता है, पर उसका अनुभव
कराने वाली कलाएँ हैं :
सामने वृक्ष है, इसका बौद्धिक ज्ञान सत्य है,
हरी पत्तियों के साथ वह आंखों की ज़्योति
को आकर्षित करता है और मेरा मन उसमें
रम जाता है—हृदय की अनुभुति सौन्दर्य है।

डा० मुन्शीराम शर्मा (सा० शा० पृ० १३)

* *

भक्ति और सौन्दर्यानुभूति

डा० मोहनलाल श्रीवास्तव

सौन्दर्य में रसानुभूति और भक्ति में अनुराग का एक जैसा संदर्भ है। दोनों की मानसिक जगत में होने वाली क्रिया और प्रतिक्रिया परस्पर सम्बद्ध हैं। रसानुभूति में अनुराग की अनिवार्य उपस्थिति है। महर्षि शाण्डिल्य ईश्वर में प्रकृष्ट अनुराग को भक्ति मानते हैं जैसा कि उनके वचन "सापरा-नुरक्तिरीश्वरे" से स्पष्ट है। भगवान नारद के विचार में "नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति" अर्थात समस्त कर्मों को भगवान को अर्पित करना और लेशमात्र भी उनका विस्मरण होने पर परम-व्याकुल हो जाना ही भक्ति है। शंकराचार्य और रामानुजाचार्य दोनों के विचार में 'स्मृति' का भक्ति में महत्वपूर्ण स्थान है।[1] मधुसूदन सरस्वती ने अपने एक श्लोक में द्रवीभूत चित्त की सर्वेश्वर के प्रति निरन्तर वृत्ति को भक्ति बताते हुए लिखा है :—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्म्माद्यनावृतम ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।[2]

श्लोक के अनुसार आराध्य के अतिरिक्त किसी अन्य की अभिलाषा का न होना, जो भाव ज्ञान तथा कर्म से आवृत्त न हो और जिसमें कृष्ण की अनु-कूलता की लालसा बनी रहे और उसी का मनन तथा चिन्तन होता रहे, वही

---

१. ब्रह्मसूत्र—शाङ्करभाष्य अ. ४, पाद १, सूत्र १
ब्रह्मसूत्र —रामानुजभाष्य १, १, १,
२. भक्तिरसामृत सिन्धु, पूर्वभाग, प्रथम लहरी, श्लोक ११

भक्ति है। तात्पर्य यह कि मन की सम्पूर्ण प्रक्रिया और क्षमता का एकनिष्ठ होना भक्ति है। ऐसी दशा में अनुराग की निरंतर स्थिति और उत्तरोत्तर वृद्धि भी सम्भव है। अनुराग एक ऐसा तत्व है जिसे भक्ति से पृथक नहीं किया जा सकता। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मध्ययुगीन भक्ति साहित्य पर विचार करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि "यद्यपि राधा और कृष्ण का प्रेम भी मानवीय प्रेम के रूप में चित्रित है, तथापि इन कवियों की भक्ति इन पदों में प्रच्छन्न भाव से वर्तमान रहती है।"[1] इसका अर्थ यह भी है कि मानवीय प्रेम भक्ति का अधिष्ठान है। आदिकाल से ही मानव अनुरागातिरेक के कारण भोग और सृष्टि दोनों में व्यस्त है। रागात्मक वृत्तियों की व्यवहार जगत में सर्जनात्मक गतिशीलता अनुराग का बोध है। इसका भावुकता से भी सम्बन्ध है। भक्त और भगवान के बीच भावना एक तथ्य है। यह मनोवैज्ञानिक और तज्जन्य सामाजिक भी है।

गत-तीन दशकों में यथार्थ शब्द को लेकर साहित्य, मनोविज्ञान, राजनीति एव समाज के क्षेत्र में जो विचार धारा चली उसका तथ्य निरूपण और सत्यान्वेषण भावनापूर्व है। यथार्थवादी कवि अपने मानस की प्रतिक्रिया, कुण्ठा आदि को छिपाकर अथवा किसी किसी प्रसंग में उसका यथावत् निरूपण कर के यह भले ही समझे कि वह वस्तु-व्यापी सत्य का प्रदर्शन कर रहा है, परन्तु वह इससे इन्कार नहीं कर सकता कि उसके प्रदर्शन और वस्तु निरूपण का एक लक्ष्य है और वह है वही जो वह चाहता है। अतः अपनी इच्छा के प्रति अनुरक्त होना यथार्थ होते हुए भी भावुकता ही है जिसमें अनुराग अथवा रागात्मकता की पूर्ण सम्पृक्ति है। भावनाप्रधान अथवा यथार्थ प्रिय साहित्य और कला दोनों में सृष्टि और सृष्ट के मध्य चाहे सौन्दर्यानुभूति का विषय हो अथवा भक्ति का, शाश्वत सम्बन्ध है। स्रष्टा अपनी सृष्टि के प्रति भावुक होता है और जब उसे अपनी रचना में अपनी भावना का तिरस्कार दिखाई देता है तब वह उसे नष्ट कर देता है। इस प्रकार सर्जन और अनुभूति दोनों में एक ही सत्ता व्याप्त रहती है।

---

१. हिन्दी साहित्य—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १८६

गोस्वामी तुलसीदास ने सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों से भक्ति की तीव्रानुभूति को महत्व देते हुए जो पंक्तियाँ लिखीं हैं उनमें सौन्दर्यानुभूति और भक्ति का सारगर्भित प्रसंग है :—

जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना । श्रवन रन्ध्र अहि भवन समाना ।
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा । लोचन मोर पंख कर लेखा ।
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला । जे न नमत हरि गुरु पद मूला ।
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी । जीवत सव समान तेइ प्रानी ।
जो नहिं करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ।
कुलिस कठोर निठुर साइ छाती । सुनि हरि चरित न जो हरषाती ।

सूर ने तो यहां तक कह दिया कि "सब विधि अगम विचारे ताते–सूर सगुन लीला पद गांवे" सूर की इस उक्ति में वस्तु और भाव दोनों जगत में जिस सत्ता की व्याप्ति है, कवि उसका वर्णन अपना धर्म समझता है क्योंकि उसे आनन्द आता है । और उसकी अनुभूति और रचना में 'रूप' के प्रति पूर्ण अनुराग है जो भक्ति और सौन्दर्य का समान तत्त्व है ।

अतएव भक्ति और सौन्दर्यानुभूति पर विचार अपेक्षित है जिससे सौन्दर्य सृष्टि में मन की तन्मयता का आधार आनन्द और उसके प्रकाश का महत्व समझा जा सके । सौन्दर्य चाहे वस्तुगत हो अथवा भावगत उसमें चेतना परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से अवश्य रहती है । सौन्दर्यानुभूति के सम्बन्ध के यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि एक ही वस्तु सभी व्यक्तियों को समान रूप से सुन्दर क्यों नहीं लगती ? इस प्रश्न का उत्तर "कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी[1] इस अर्घाली में प्राप्त हो सकता है । ज्ञानी शब्द जागरूक मानस और अर्जित बुद्धि की ओर संकेत करता है । कला दर्शन से दिव्य दृष्टि की प्राप्ति का विचार भो यही सिद्ध करता है कि सौन्दर्यानुभूति उत्तरोत्तर बढ़ती है, घटती नही । डा० दास ने प्लेटो की सौन्दर्य दृष्टि की समीक्षा में अपना विचार प्रकट किया कि––कला केवल

---

१. मां, बाल, ३३–२

भरत,—नाट्य शास्त्र—६, ३१ (पृ० ६३) 'सुमनस: प्रेक्षका:'

दृष्ट वस्तु का अनुकरण नहीं करती, बल्कि वह समस्त प्रकृति में निहित आन्तरिक सत्ता में प्रवेश करती है।"[1] इसी सम्बन्ध में यदि कान्ट का यह विचार भी सम्मिलित कर लिया जाए कि—अत्यन्त विशुद्धि के अभाव में यथार्थ सौन्दर्य बोध तथा सौन्दर्य सृष्टि सम्भव नहीं है,[2] तो दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्रथम है कि लौकिक जगत का अस्तित्व अलौकिक जगत से पृथक नहीं, और दूसरा कि द्रष्टा की मानसिक कालिमा को हटाकर उसे दिव्यता प्रदान करने की शक्ति सौन्दर्य में है। यह शक्ति लौकिक जगत को अलौकिक जगत से सम्पृक्त भी कर सकती है। कवि का मानस अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अलौकिक जगत के अधिक निकट होता है। यही कारण है कि वह जन मानस की विभिन्न अनुभूतियों के साथ इतना समरस हो जाता है कि उसकी अनुभूति में तथा काव्य रसिक की अनुभूति में अन्तर नहीं रहता।

सौन्दर्यानुभूति की पराकाष्ठा का अनुमान व्यक्ति की तन्मयता से लगाया जा सकता है। इसमें सुन्दर के प्रति सादर एवं अनुराग पूर्ण मानसिक स्थिति रहती है। भक्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति का संकेत आचार्य शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है। इसके स्पष्टीकरण में उन्होंने लिखा है कि——जब पूज्य भाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।[3] लीलाओं द्वारा प्रति वर्ष भारत के असंख्य नर-नारी अपने आराध्य राम कृष्ण की लीला का आनन्द लेते हैं। उनकी तत्कालीन रुचि में आराध्य के सौन्दर्य दर्शन की लालसा विद्यमान रहती है। उसकी अद्भुत आकर्षण शक्ति को सौन्दर्याकर्षण मानना सर्वथा उचित है। भक्ति के उद्भावना केन्द्र की ओर संकेत करते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा कि "भक्ति हृदय से की जाती है।[4] सौन्दर्यानुभूति में हृदय के महत्व को विशेष स्थान प्राप्त है। भगवान् के जिस लोकरंजनकारी स्वभाव के अवलम्बन से मानव

१. डा० दास, सौन्दर्य तत्त्व, पृ० १५८

२. वही–पृ० १६१

३. रामचन्द शुक्ल, चिन्तामणि, पृ० ३२

४. वही० पृ० ४०

हृदय को उसके पूर्ण भावसंघात के साथ कल्याण मार्ग की ओर आपसे आप आकर्षित होने की प्रस्थापना आचार्य शुक्ल ने की उसे भगवान की सौन्दर्यानुभूति से आनन्द प्राप्ति की संज्ञा देना उचित होगा।[1] गोस्वामी तुलसीदास के भक्ति मार्ग को इनकी सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य बोध से दूर नहीं रखा जा सकता जिसके निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) गोस्वामी जी राम को सौन्दर्य की सीमा तथा अति रम्य मानते हैं;
(२) राम में अनन्त शक्ति है;
(३) उनका सौन्दर्य आनन्दपूर्ण एवम् परम कल्याण स्वरूप है;
(४) वे आकर्षण के केन्द्र हैं; और
(५) वे भगवान् और मनुज के समन्वित रूप हैं।

इनका आधार है साक्षात्कार की अनुभुति और उसका प्रकाशन। गोस्वामी जी को सौन्दर्य का साक्षात्कार हुआ और उनको अनन्त शक्ति और शील प्रकाशपूर्ण लोक दिखाई दिया जिससे आनन्द की तरँगें उठती हैं।[२]

गोस्वामी जी का आधार भारत की वह भक्ति धारा है जिसमें निमज्जन करता हुआ व्यक्ति संसार के समस्त जीवों को अवगाहित होने के लिए अनुरोध करता है। सौन्दर्य का प्रभाव अन्तः करण के द्वारा मानव की समस्तक्रियाओं पर पड़ता है और उसका आकर्षण उसकी समस्त ऐन्द्रियता को केन्दीभूत करता हुआ विशेष आनन्द की ओर ले जाता है। जब हम किसी कला के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं तो उसकी प्रशंसा वाणी से भी करते हैं। बार बार हमारी अन्तश्चेतना में उसका प्रभाव भिन्न भिन्न मानसिक प्रवृत्तियों को स्पर्श करता हुआ इतना तीव्र आन्दोलन उत्पन्न कर देता है कि हमें उसको पुनः देखने,

---

१. चि म० पृ० २०५ "भक्त के लिए भक्ति का आनन्द ही उसका फल है वह शक्ति, सौन्दर्य और शील के अनन्त समुद के तट पर खड़ा होकर लहरें लेने में ही जीवन का परम फल मानता हैं।"

२. वही पृ० २०२—"गोस्वामी जी ने अनन्त सौन्दर्य का साक्षात्कार कर के वह उसके भीतर ही अनन्त शक्ति और अनन्त शीलकी वह झलक दिखाई है जिसके प्रकाश में लोक का प्रमोद पूर्ण परिचालन हो सकता है। सौन्दर्य शक्ति और शील तीनों में मनुष्य मात्र के लिए आकर्षण विद्यमान है।

प्राप्त करने और उसके विषय में विचार करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हो जाती है। यही कविता में व्याप्त सौन्दर्य-चेतना का कारण है। कविता उत्कर्ष प्राप्त सौन्दर्यानुभूति है[1] और सौन्दर्यानुभूति ही रस-दशा है।

कभी कभी अत्यन्त तीव्र अनुभूति को वाणी से कह सकना कठिन हो जाता है तब केवल शेष इन्द्रियों की तज्जात प्रतिक्रियाओं से ही उसका पता लगाया जा सकता है और उससे भी तीव्रतम अवस्था में व्यक्ति का निश्चेष्ट एवं मौन हो जाना भी देखा और सुना गया है। क्या हम इन तीनों ही अवस्थाओं को सौन्दर्यानुभूति से पृथक कर सकते हैं? अभिव्यक्ति पूर्ण हो अथवा किसी असमर्थता के कारण मौन हो अनुभूति की स्थिति सर्वथा स्पष्ट है। गोस्वामी जी की आनन्दानुभूति से प्रवाहित काव्य धारा का आधार है उनमें आनन्द की वह तीव्र उद्भावना जिसे निरन्तर बनाए रखने के लिए वे मानस की रचना करते हैं जिसका लक्ष्य 'स्वान्तः सुख' है। सौन्दर्यानुभूति की पराकाष्ठा है भक्ति का सुष्ट आधार। भारतीय भक्ति आन्दोलन सौंदर्य एवं शक्ति के प्रति अविस्मरणीय चेतना है। भक्त का समर्पण भाव उसकी व्याकुलता तथा उसका आनन्द से ओत प्रोत निश्चल मन, सौन्दर्यानुरति की स्पष्ट प्रतिक्रिया है।

रूपासक्ति तथा यशकीर्तनासक्ति को उच्चकोटि की सौन्दर्यानुभूति मानने में औचित्य हैं।[2] चित्त की द्रुतदशा तथा माधुर्य गुण के रसानुभूति की चैत्तिक भूमिका की क्षमता से भक्ति के स्वरूप को इस दशा तक लाने के पीछे सौन्दयं की तीव्र अनुमति का आधार प्रतीत होता है।[3] यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि सौन्दर्यानुभूति में वस्तु के प्रति अनुराग दृढ़ होता है, परन्तु भक्ति में 'राग' से मुक्ति की प्रधानता होती है। गोस्वामी जी की भक्ति वैराग्य मूलक है, क्योंकि 'राग' से तुलसी का अभिप्राय पतंजलि के 'सुखानु-

---

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी—संस्कृति, पृ० ११२
"किसी मार्मिक वस्तु या घटना के प्रत्यक्षीकरण से सम्भूर्तन प्रक्रिया सान्द भावानुभूति को गति शील बनाने वाली, समवेदना द्वारा विशेष प्रकार की स्वरप्रक्रिया और ध्वनि प्रवाह के रूप में फूट पड़ने वाली मानसिक प्रति- क्रिया।'

२. डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास पृ० ४७२-७३

३. डा० उदयभानु सिंह—तुलसी दर्शन मीमाँसा पृ० २६५

शयी राग से है। लौकिक पदार्थों के प्रति चित्त की आसक्ति 'राग' है।[1] मेरा नम्र निवेदन है कि लौकिक पदार्थों की आसक्ति को चित्त से दूर करके राम विषयक प्रीति में चित्त की आसक्ति को चाहे अलौकिक प्रेमासक्ति कहा जाए, परन्तु इसका स्थान चित्त (मन) की रस दशा अथवा सर्व व्याप्त माधुर्य होगा। एक मार्ग की विरक्ति किसी दूसरे मार्ग की आसक्ति हो जाती है। भगवद् भक्ति विषयक रूपासक्ति में आसक्ति विद्यमान हैं। गोस्वामी जी की भक्ति भाव की दृढ़ता का आधार प्रतीति और ज्ञान है। किसी वस्तु के सौन्दर्य में वस्तु का ज्ञान, उसकी धारणा, आकर्षण शक्ति आदि का स्थान है।

पायउं नाम चारु चिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं।

× × × ×

प्रनतपाल प्रन तोर मोरप्रन जिअउं कमल पद देखे।

× × × ×

तुलसी दास प्रभु तब प्रकास बिनु संसय टरै न टारी।[3]

ऊपर की पंक्तियों में चारु चिंतामणि को हृदय से पृथक न करने तथा अपने चित्त को राम जी के स्याम रूप के निष्कष पर निरंतर कसने की विधा ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है। अतः ज्ञान (प्रकाश) के सिर निवृत्ति सहायक कारण होने से प्रवृत्ति कही जा सकती है।

जाने बिनु न होइ परतीती—बिनु परतीती होइ नहिं प्रीती।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई—जिमि खगपति जल कै चिकनाई।[2]

इन पंक्तियों में प्रीति की अनिवार्यता भक्ति के लिए स्वीकार की गयी है। ज्ञान से विश्वास, और विश्वास से प्रेम तथा प्रेम की दृढ़ता से भक्ति की उपलब्धि हमको सौन्दर्य सम्बन्धी दो विशेष विचारों की ओर आकृष्ट करत है—पहला है ज्ञान और दूसरा है उसके अस्तित्व की उपयोगिता। अस्तित्व की की अनुभूति में साहचर्य विद्यमान रहता है। साहचर्य से वस्तु की उपयोगिता और उसके प्रति निरन्तर बढ़ने वाला सोद्देश्य प्रेम सम्बद्ध रहते हैं। कारण कार्य

---

१. वही० पृ० २६६
२. वि० प०—१०५ तथा ११३
३. मा० उत्त० ८९—क—४.

भाव के आधार पर ज्ञान और उसमें विश्वास एवं तज्जन्य प्रीति का विषय विषयिगत दोनों ही सम्बन्ध प्रतीत होते है। भक्ति सौद्देश्य है तथा निरुद्देश्य भी परन्तु दोनों ही अवस्थाओं में भक्ति से प्राप्त आनन्द, भक्ति में प्रीति तथा भक्त एवं भगवान का परस्पर सम्बन्ध बना रहना सुनिश्चित है। इसलिए इसमें अनुभूति का असंदिग्ध रूप सामने आ जाता है। अनुभूति के बिना सौन्दर्य की धारणा अथवा उसकी अभिव्यक्ति विवादास्पद है। सौन्दर्य के प्रसंग में अनुभूति को छोड़ा नहीं जा सकता। अनुभूति आध्यात्मिक जगत की वस्तु है।[1] और भावना (अन्त: करण) की स्थिति से इसका तीव्र एवं घनिष्ट सम्बन्ध है।

जिन्हेके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखीं तिन्ह तैसी ।।[2]

× × × ×

निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरम विशेषा ।।[3]

अत: जहाँ जहाँ भक्ति भाव के पावन चरण का उल्लेख किया जाएगा वहाँ-वहाँ भगवान के रूप लावण्य का वर्णन उक्त भाव का प्रमुख अंग बना रहेगा इसमें हमारी भावात्मक सम्भावना का दैवीय सम्भावनाओं से योग है।[4]

सौन्दर्यानुभूति और भक्ति भाव इस रूप में सहगामी है। भक्ति की अनुभूति रसात्मक है, इसमें आराध्य-भावना और उसकी महत्व चेतना के[5] रूपानुभूति तथा गुणानुभूति के प्रकार एक है। रस के प्रसग में रसन या आस्वादन जैसी स्वाभाविकता पर ध्यान जाते ही रस, रूप, गंध, स्पर्श आदि द्वारा सौन्दर्यानुभूति की ओर भी ध्यान जाता है। ऐसी स्थिति में रसानुभूति को ही सौन्दर्यानुभूति कहा जाएगा। भक्ति सम्प्रदाय की रस प्रक्रिया में रसतत्व का चरम लक्ष्य तथा लक्षण आनन्द को बताने का मुख्य उद्देश्य है रसानुभूति की आनन्द पूर्ण स्थिति। भगवान की अनुभूति ही पूर्ण रसानुभूति

---

१. डा० रामप्रसाद हरबाल : संस्कृति (अनुभूति एवं सौन्दर्य) पृ० १५६

२: मा० १. २४०–२

३. वही—२४४—४

४. डा० सर्वपल्ली कृष्णन्—भारतीय दर्शन पृ० ५१५

५. डा० प्रेम स्वरूप गुप्त : पं० जगन्नाथ तिवारी अभिनन्दन ग्रन्थ काव्य शास्त्र, पृ० ३३० (भक्ति रस की काव्य शास्त्रीय स्थिति)

है ।[1] सुख तथा आनन्द का ऐन्द्रिय त।। अतीन्द्रिय अनुभूतियों के आधार पर अर्थ भिन्नता सर्व ज्ञात है, परन्तु भगवद् विषयक रति के संदर्भ में अथवा भक्ति के अर्थ में सुख तथा आनन्द को समानर्थक माना गया है ।[2] गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम को आनन्दपूर्ण परब्रह्म माना है परन्तु उन्हें 'सुखाकरं सतांगतिं' भी कहा है ।[3] इस प्रकार आनन्द और सुख की भिन्नता भक्ति की कोटि में समाप्त हो जाती है । इस प्रकरण के अनुसार भक्ति-भाव अथवा भक्ति रस का आस्वादन ऐन्द्रिय होते हुए भी अतीन्द्रिव समझा जा सकता है । लौकिक एवं अलौकिक दोनों ही अवस्थाओं में सौन्दर्य की अनुभूति का आधार तत्त्व से दृश्य जगत की एकात्मता है । इसमें प्रेम और माधुर्य का स्वाभाविक समावेश है।

काम और सौन्दर्य का सम्बन्ध एक प्रकार से प्रेम और माधुर्य का सम्बंध है । प्रेम के अनेक रूपों में अनुभूति की तीव्रता ही लक्ष्य है। यही रस का आधार है । प्रेम व्यापक एवम् गम्भीर है ।[4] इससे संसार का कोई प्राणी अथवा पदार्थ अस्पृश्य नहीं है । सृष्टि के निर्माण में काम तत्त्व विचारणीय है। काम और प्रेम सहगामी और परस्परावलम्बी तत्त्व हैं। जहाँ काम है, वहाँ सृष्टि का बीज मन्त्र है और उसमें प्रेम का महज निवास है सौन्दर्य दोनों की आभा को अपने रूप में प्रकट कर देता है । ऐसी स्थिति के प्रेम की अनुभूति अद्वैत की अनुभूति होती है । इसमें किसी प्रकार का व्यवधान नहीं । प्रमी प्रेम पात्र से प्रतिदान नहीं, प्रेम का सुख चाहता है । भवभूति ने "अद्वैतं सुख दु:खयो :[5] प्रेम भावना की परम कोटि के रूप में एक रस जैसी स्थिति के लिए कहा है । "वीत विघ्ना प्रतीति"[6] का अर्थ

---

१. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु (भक्ति रस मीमाँसा) पृ० ३८. प्र० हिन्दी

२. वही—पृ० ३६

३. मा०—आरण्य०—४-३ (श्लोक)

४. डा० रामप्रसाद मिश्र: खड़ी बोली काव्य में विरह वर्णन--पृ० १२

५. भवभूति : उत्तर रामचरितम्–१—३६—

६. डा० कुमार विमल : सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व-पृ०६३ पर । पंचपगेश शास्त्री का मत—"सौन्दर्य भावन में स्वाभाविक एकाग्रता रहती है सम्भवत: इसी कारण पंचपगेश शास्त्री ने सौन्दर्यानुभूति को अभिदव गुप्त के शब्दों में "वीति विघ्ना प्रतीति :" कहा है।"

व्यवधान रहित अनुभूति है। इसे स्वाभाविक एकाग्रता कहिए या तन्मयता। यदि यह तन्मयता अथवा इससे सम्बद्ध अनुभूति आनन्द की ओर निरन्तर बढ़ती जाए तब समाधि की स्थिति आ सकती है। राम के रूप पर जनक जी इतने आसक्त हो गए कि उनका वैराग्य पूर्ण-मन-अनुराग हो गया।[1] जानकीजी को रामचन्द्र जी "सजन सगे" जैसे प्रिय लगते हैं।[2] इन दोनों ही स्थितियों में प्रेम की निवृत्ति से प्रवृत्ति और प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर गति दर्शनीय है। गोस्वामी तुलसीदास जी के राम-प्रेम में यह बात बहुत ही सुन्दर ढंग से मुखरित है। प्रेम से रूप अरूप का आविर्भाव सम्भव है 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होंहि मैं जाना।' का कथन ध्यान देने योग्य है।

जहाँ रूप और गुण का उचित समन्वय होता है वहाँ आसक्ति की प्रधानता बढ़ती जो आसक्ति मन को समुज्ज्वल भी करतीं है।[3] 'माधुर्य रस और उज्ज्वल रस' को पर्याप्य मानने का कारण माधुर्य भावना से आत्म परिमार्जन और अन्तः करण की शुद्धता का बोध प्रतीत होता है 'नीता भक्ति रस प्रोक्तो मधुराख्यामनीषिभिः' इस सन्दर्भ में भगवान श्रीकृष्ण और राधा की अलौकिक प्रीति को माधुर्य रस का मूल आधार माना गया है।[4] भक्ति रस की प्रस्थापना में मधुर भक्ति रस का प्रसंग मधुरा रति पुष्टि की मान्यता है।[5]

राम सीता का जनक की वाटिका में यद्यपि साङ्ग मिलन नहीं हुआ, तथापि मानसिक धरातल पर दोनों के स्नेह का आदान-प्रदान परम मुग्धकारी अवस्था में इस प्रकार प्रदर्शित किया गया मानो दोनों ने परस्पर रूप-गुण ा को आत्मसात् कर दिया हो।[7] यह दृश्य अशरीरी होता हुआ भी शरीर है क्योंकि अनुभूति की तीव्रता मानसिक उद्वेलन और काम भाव से सम्बद्ध रति का पोषण कर रही है रति तत्वत: काम रति है।[7] शृंगार जिस

---

१. मा० बाल०—२४२–१-३-४

२. वही–१८५.३

३. भवभूति : उत्तर रामचरितम्—६–३१ गुणौ रूप गुणौश्चापि प्रीतिर्भूयोंण्यवर्धत।

४. रूप गोस्वामी : उज्जवल नीलमणि: १-३

५. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु=१, ४१२ १।

६. डा० राम प्रकाश अग्रवाल बाल्मीकि-तुलसी मू०, पृ० ३२१

७. डा० उदयभानु मिह--तुलसी काव्य मीमांसा पृ० २८९

विधान और रूप का पोषण करता है उसे सौन्दर्य कहा जायेगा। तुलसी सम्मत श्रृंगार-भावना में काम की उपेक्षा नहीं की गयी है, परन्तु काम को केवल आँगिक चेष्टाओं तक सीमित न रखकर विश्व व्यापी सौन्दर्यसूत्र एवं स्फुर्ति विधायक रूप में स्वीकार किया गया है।

सियराम सुरूप अगाध अनूप बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति समकथा मुख राम कों नामु हिएं पुनि रामहिं को थलु है।
मति रामहिं सों गति रामहिं सों रति राम सों रामहि को बलु है।
सबकी न कहैं तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है।[1]

रति की उष्णता कामजन्य है और तृप्ति विधायक होने के कारण शान्ति प्रदाता भी।

सौन्दर्य तत्व के दोनों महत्वपूर्ण पक्ष आनन्द और प्रकाश का समन्वय रतिभाव की उष्णता और तज्जन्य शीतलता के रूप में इस श्लोक में द्रष्टव्य है :—

रतिरनिशनिसर्गोष्णाप्रबलतरानन्दपूररूपैव ।
ऊष्माणमपि वमन्ती सुधाँशुकोटेरपि स्वाद्वी ।।[2]

सौन्दर्य के प्रति आसक्ति जो पूर्ण समर्पण की दशा तक व्यक्ति को ले जाए तथा वह अपनी सत्ता का विस्मरण करके सुन्दर कीं ही कामना श्वास प्रति श्वास में करता रहे, सौन्दर्यानुभूति की चरम अवस्था कही जाएगी। भगवद्-विषयक रति भावना भगवान के सौन्दर्य के प्रति पूर्ण समर्पण की अवस्था है, यही भक्तिरस है। तुलसी साहित्य में राम-भक्ति का आग्रह सौन्दर्य के प्रति समर्पण का स्वर है और उसका भावात्मक अनुगामी है भक्तिरस, जिसमें सौन्दर्य के प्रकाश और आनन्द गुणों का संचरण अविराम गति से हो रहा है।

★ ★

---

१. कवि० उत्त०--३७
२. हि० भ० र० ३५—पृ० १०५

मध्ययुगीन कृष्ण-काव्य में व्यापार-वर्णन

डा० हरगुलाल

मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में व्यापार के लिए बनिज[1], व्यापार[2] और व्यौपार[3] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पद्मावत में बनिज, बेपारा, बेवहरिया, बेवहारू बौसाऊ आदि शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। व्यापार करनेवाले को उन दिनों व्यौपारी अथवा व्यापारी कहा जाता था। पाणिनि के काल में व्यापारियों के लिए वणिक् और वाणिज ये दोनों शब्द प्रयुक्त होते थे उन दिनों व्यापारी किसी भी जाति का हो वह 'वाणिज' कहलाता था। पद्मावत में व्यापारी के लिए 'बनिजारा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। व्यापार की वस्तु के लिए हमारे निर्दिष्ट काल में गथ, माल, वस्तु, सौंज, सौदा आदि शब्द प्रयुक्त होते थे। व्यापारी से वस्तु खरीदने वाले को 'गाहक' कहा जाता था। परमानन्ददास के कृष्ण राधा के गोरस के 'अमोले गाहक' हैं। क्रय-विक्रय का स्थान उन दिनों हाट अथवा पैंठ कहलाता था। मीरा ने एक स्थान पर मंडी' का उल्लेख किया है। 'मंडी' से तात्पर्य उस व्यापारिक स्थान से है जहाँ गाँव का किसान आलू, अनाज, गुड़ आदि गाड़ी में रखकर बेच आता है और दूसरे व्यापारी उसे थोक रूप में खरीद लेते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि थोक व्यापार वाला बाजार 'मंडी' कहलाता है।

---

१. ऐसी कहौ **बनिज** कौ अटकी। सूर सागर १५२५, १५६६ तथा २१४२।

२. देव सकल **व्यापार** परस्पर, ज्यों पसु दूध-बराई। वही, प्र० स्क०, १९५।

३. वही, द० स्क०, प० सं० ३६६३।

उस ससय व्यापारी अपना माल बेचने के लिए गोकुल और वृन्दावन जैसे गाँवों में आकर पैंठ करते थे ।[1] आज भी सप्ताह में एक बार किसी एक प्रमुख गांव में पैठ लगती है जिसमें आसपास के व्यापारी अपनी चीजें बेचने के लिए आते हैं और शाम को वापस लौट जाते हैं । गोपियाँ उद्धव से साँज को 'हरि-पुर' अर्थात मथुरा[2] तथा जोगमोट' को काशी में ले जाकर बेचने की सलाह देती हैं ।[3] इससे यही प्रकट होता है कि व्यापारी अपना माल वेचने के लिए दूर के नगरों में भी जाया करते थे । बहुत सी वस्तुएं गाँवों में न बेची जाकर केवल शहरों में वेची जाती थी । गोपियों का उद्धव से यह कहना कि इस 'निर्गुन निरमोल गाठरी' का ब्रज में कोई ग्राहक नहीं है, इसे किसी बड़ी नगरी में ले जाकर बेचो इसी बात बात का सूचक है ।[4]

व्यापारिक यातायात के साधन एव व्यापारियों से कर आदि उगाहना—व्यापारी अपना माल बैल[5] अथवा गयन्द[6] पर लादकर ले जाते थे । 'ब्रज-प्रवेश-शोभा' प्रसंग में नन्द कमल के फूलों से एक हजार सकट मरवा कर कंस के पास भिजवाते हैं ।[7] नागरीदास ने पवंत के ऊपर वैलों के काँच की गाड़ी लेकर निकलने का उल्लेख किया है ।[8] निश्चय ही शकटों का प्रयोग बड़े व्यापारी अथवा ग्रामीण जन उस समय अपना माल ढोने में करते रहे होंगे । अधिकतर व्यापारी पटसन अथवा काली ऊन की बनी 'गोन' में अपना सामान भरकर 'खेप' किया करते थे ।[9] पशुओं की पीठ पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक माल लादकर ले जाने को 'खेप' लादना कहते हैं । मीरा ने रथ में बैलों

---

१. ऊधो तुम ब्रज में पैंठ करी । सू० सा० (सभा), द०स्क०, प० सं० ४२८१
२. वही, प्र० स्क०, ३१०
३. वही, द० स्क०, सं० ३९२९
४ वही, वही, ६६६३
५. वही, वही, २१४६
६. वही, वही, २१४७
७. वही, वही, १२०१
८. ब्रजमाधुरी सार, पृ० १९५
९. सू० सा० (सभा), ३९६५

को जुताकर, ऊंट पर भार कसने की बात कही है ।[1] राजस्थान की तरफ ऊंट को सवारी करने एवं बोझ ढोने के लिए काफी उपयुक्त पशु माना जाता है। साँडनी एक ही दौड़ में मीलों निकल जाती है ।[2] विद्यापति ने एक स्थान पर 'राजपथ'[3] की बात कहकर तत्कालीन प्रशस्त मार्गों की ओर सकेत किया है। एक अन्य पद में घाट पर राधा नाविक कन्हैया से प्रार्थना करती है कि मेरा हाथ पकड़ कर उस पार पहुंचा दीजिए, मैं उतराई में आपको अपूर्व माला दूंगी ।[4] इससे यही प्रकट होता है कि उन दिनों नदियों में नावें पड़ी होती थीं जिनसे सवारी एवं माल ढोने का कार्य किया जाता था। डा० मायारानी टंडन के विचार से इस काल में सुदूर प्रदेशों से आने वाले व्यापारी जब घाट-विशेष पर नदी पार करते थे तो उनका 'दान' अर्थात 'कर' या 'चुंगी' देनी पड़ती थी जिसको लेकर अष्टछापी कवियों ने दान-लीला का वर्णन किया है।[5] दूध, दही, माखन बेचने के लिए मथुरा जाती हुई गोपियों से कृष्ण इसी कारण घटवारे की हैसियत से कर माँगते है ।[6] एक पद में कृष्ण ने स्वयं को शासक की ओर से नियुक्त 'दान', 'कर' या 'चुंगी' उगाहने वाला बतलाया है और दानादि न लेने पर शासक की ओर से गाली खाने की बात कही है। शासक दान उगाहने वाले को अधिकार रूप में 'वीरा' दिया करता था और चाहे जब उसे जवाबदेही के लिए बुला सकता था।[7] इस पद से यही प्रतीत होता है कि व्यापारियों से उन दिनों राज्य की तरफ से एक प्रकार का कर वसूल किया जाता था। डा० यूसुफ हुसैन ने 'दि बुक आफ ड्यूरेट वारबोसा' का उदाहरण देते हुए 'दाबूल' नाम के नगर में हिन्दु एवं मुसलमान दोनों के चुंगी कर देने

---

१. मीरा-माधुरी, प० सं० १०२
२. वही, प० सं० वही
३. विद्यापति पदावली, पृ० ५१
४. वही, पृ० १०३
५. डा० मायारानी टंडन, 'अष्टछाप काव्य का साँस्कृतिक मूल्यांकन,' पृ० ४२१-२२
६. सू० सा० (सभा), द० स्क०, प० सं० १५२४
७. वही, वही, १५७५

से भारी संख्या में रुपया जमा होने की बात कही।[1] गोपियों की शब्दावली में यह 'कर' खिरक से दूध दुहाकर घर ले जाने वाले व्यक्तियों पर न लगकर उन लोगों पर लगता था जो लौंग-सुपारी का व्यापार करते थे।[2] 'दान' या 'कर' मार लेने वाले व्यक्ति से सारा दान वसूल कर लिया जाता था। सूर ने घाट पर जो अटक की बात कही है वह दानादि न देने पर माल को घाट पर ही रोकने की ओर एक प्रकार का संकेत है।[3]

उन दिनों मार्ग में व्यापारियों को लूट का भी डर होता था। मार्ग में बटमार, ठग, चोर, उचक्का गंठकटा लठ बाँसी, लुटेरे और धूर्त व्यक्ति होते थे। ये लोगों को पहले तो विषमोदक दिखलाते और पथिक उन्हें खाने पर जैसे ही देहदशा भूलता वैसे ही ये उसके गले में फन्दा डालकर उसे मार देते थे। गोपियाँ कृष्ण और उनके सखाओं के भय से मिलकर जो मक्खन बेचने जाती हैं उसमें अत्यल्प प्राचीन सार्थवाह (प्राचीन काल में एक साथ निकला व्याहारी समूह) की झलक देखने को मिलती है। सूर के कृष्ण 'दान लीला' प्रसंग में गोपियों को बनजारिन के नाम से सम्बोधित करते हैं। डा० निर्मला सक्सेना के विचार से 'बनिजारा' ज्येष्ठ सार्थ का द्योतक है।

व्यापार के अन्तर्गत आने वाली वस्तुएं एवं नाना प्रकार के व्यापारी— उन दिनों बनिज के अन्तर्गत मुख्यतः नारियल, दाख तथा अन्य मेवे, लौंग, हींग, मिर्च, पीपरि, अजवाइन, कूट, जायफल, सोंठ, सुपारी, चिरायता, कट-जीरा, मजीठ, सिंदूर, वाइबिडंग, बहेड़ा, हर्र आदि मसाले एवं उपयोगी वस्तुएं परिगणित की जाती थीं।[4] गोपियाँ तो नित्यप्रति दूध, दही, मक्खन बेचने मथुरा जाया ही करती थीं। एक स्थान पर बिहारी ने हाथियों के व्यापार का उल्लेख किया है।[5] थोड़ी पूंजी वाले व्यापारी गलियों में फेरी देकर वस्तुएं बेचा करते थे। जो लोग दूर-दूर तक फेरी से माल बेचने जाते थे, उन्हें 'बंजी' फिरने वाला कहा जाता था। बनजारे दूर-दूर तक व्यापार

---

१. मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति, पृ० १३३
२. गोविन्दस्वामी, २५ तथा २७
३. सू० सा० (सभा), प्र० स्क०, ३१०
४. सू० सा० (सभा), द० स्क० १५२८
५. बिहारी-रत्नाकर, दो० ४३६

करने जाते थे, पद्मावत में ऐसा वर्णन पाया जाता है।[1] गोपियों की शब्दावली में पुराण लादे परमार्थी उद्धव टाँड़ें (व्यापार का माल) लादे बनजारे के रूप में उन्हें योग सिखाने आए हैं। माता यशोदा फेरी करने वाले से कृष्ण भौंरा-चक- डोरी' खरीदती हैं। परमानन्ददास ने फेरी से आम तथा बेर बेचने वाली और काछिन (फल, तरकारी बेचने वाली) का उल्लेख किया है। मीरा ने सिर पर दही रखकर बेचने वाली 'ग्वालिनी' का उल्लेख किया है।[2] उद्धव 'जोग की मोठ' सिर पर धरे हुए घर-घर डोलते हैं।[2]

मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में बड़े व्यापारी को 'साहु' अथवा 'साह' की संज्ञा प्रदान की गई है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यदि तुम अपने 'साहू' को यहाँ लिवा लाओ तो हम निर्गुण जैसी निरर्थक वस्तु का मुंह माँगा दाम देंगे। उन दिनों इन व्यापारियों के **दलाल** भी हुआ करते थे जो जगह-जगह जाकर सौदा पटाते थे। विद्यापति ने एक पद में कामदेव को इसी तरह का दलाल माना है।[3] सूर ने विनय के पदों में दलाली देने की बात कही है। गोपियों की दृष्टि में उद्धव भी इसी तरह के दलाल थे जो उन्हें भोली-भाली विचार कर ठगने की दृष्टि से 'फाटक' के बदले में 'हाटक माँग रहे थे :

सूर ने **'पंसारिनि'** एवं **'बजाजिनी'** का उल्लेख करके पंसारी (मिर्च, मसाले बेचने वाला) एवं बजाज (कपड़ा बेचने वाला के व्यवसाय की ओर संकेत किया है।[5] परमानन्ददास की एक गोपी कृष्ण द्वारा अपनी चूड़ियाँ तोड़ देने पर खीझ कर कहती है कि मैं तो अभी नई चूड़ियाँ पहन कर आई थी। इस कथन से निस्संदेह **मनिहार** (चूड़ी पहनाने वाला) का ज्ञान होता है। इत्र बनाकर बेचने वाले को गंधी कहा जाता था : बिहारी ने गंधी' का बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है। सूर की गंधिनि अरगजा, चन्दन. केशर आदि सुगन्धित पदार्थ ले जाकर दूलह श्रीकृष्ण के दर्शन करना चाहती है। नन्ददास ने कृष्ण को बीरा खिलाने वाले **तमोली** की चर्चा की है। परमानन्ददास ने पीले

---

१. जायसी-ग्रंथावली, पृ० ३०

२. मीरा-माधुरी, प० सं० ४३

३ सू० सा० (सभा), द० स्क० प० सं० ३७२४

४. विद्यापति पदावली, पृ०८३

५. वही वही, पभ सं० १४७३, सू० सा० (वैंकटेश्वर प्रेस) पृ० ३४६

पान में सुगन्ध, सुपारी और लौंग की कील लगाकर 'बीरा' तैयार करने की विधि पर प्रकाश डाला है। विद्यापति ने एक स्थान पर चमरी गाय का उल्लेख करके परोक्ष रूप से **चमर तैयार करने और उसे बेजने के व्यवसाय** की ओर संकेत किया है। कंस की ओर से नियोजित शिशु कृष्ण को मारने वाले श्रीधर ब्राह्मण के कर्म को सूर ने **कसाई** का कर्म बतला कर मांस बेचने वाले कसाई के व्यवसाय की ओर संकेत किया है। पक्षियों को पकड़ कर बेचने वाला व्यवसायी **पारधी** कहलाता है। सूर ने द्रुम पर बैठे पक्षी के रूप में बाण संधान करने वाले पारधी से परित्राण पाने के लिए भगवान से प्रार्थना करके पारधी के कर्म की सूचना दी है। अन्य पद में उन्होंने कृष्ण के सौन्दर्य को चारा, उनकी अलक को फन्दा, मोर मुकुट को धोखे की टट्टी, कटाक्ष को लकुट एवं लासा, अलक को तरंग कम्प एवं कृष्ण के मृदु हास्य को पिंजड़ा बतला कर गोपियों के नेत्र रूपी पक्षियों को फंसाने की बात कहकर पारधी की पक्षी-पकड़ते समय की अनेक आयासपूर्ण प्रक्रियाओं का सविस्तार उल्लेख किया है।

उस समय समाज में हीरे, जवाहरात एवं सोने–चाँदी के आभूषण बेचने वाले जौहरी एवं सर्राफ भी हुआ करते थे। राधा का लाख टके की 'मोतिसिरी' की माला खरीदना, यशोदा का नेग के रूप में दाई को मणि-जटित हार एवं दूसरे स्वर्णाभूषण दान देना तथा नन्द का अपने साथियों को मणि माला पहिनाना आदि उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय जौहरी और सर्राफों के यहाँ बहुमूल्य आभूषण मिल जाया करते थे। रतन, मणि, हीरा, सीपज, मुक्ता, माणिक, मरकत, प्रवाल, पिरोजा आदि बहुसूल्य नग उन दिनों पाये जाते थे एवं आभूषण का सौन्दर्य विवर्द्धित करने की दृष्टि से इन्हें आभूषण के मध्य में जड़ा भी जाता था। समाज में उन दिनों ऋण देने वाले महाजन भी हुआ करते थे जिनका ध्येय मूलधन पर ब्याज कमाना होता था। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के विचारानुसार ब्याज पर रुपये देने का व्यवसाय वैदिक काल में ही प्रचलित हो गया था। विद्यापति ने बिना मूल दिये ब्याज दिये ब्याज मांगने वाले एक महाजन का उल्लेख किया है। गौरी शंकर हीराचन्द ओझा ने मध्यकाल में ऋणदास पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि जब तक ऋण लेने वाला महाजन को मयब्याज ऋण नहीं चुका देता था तब तक वह ऋण दास कहलाता था और उस महाजन के यहाँ सेवा करनी

पड़ती थी।[1] एक पद में गोपियों ने कृष्ण पर अपना सर्वस्व वार कर उन्हे अपना ऋणी बना लिया है और गोपियाँ व्याज रूप में यदि उद्धव का उपदेश ग्रहण नहीं करतीं तो वे ऋण दास बनकर गोकुल में गाय चरायेंगे।[2] निश्चय ही सूर के समय में भी ऋण-दास की प्रथा प्रचलित रही होगी। गोपियों के विचार से अक्रूर 'मूल वसूल करने वाले एवं उद्धव 'व्याज' उगाहने वाले हैं।[3] सारांशत: तत्कालीन समाज में व्यापार आजीविका का मुख्य साधन माना जाता था। उस समय समाज में नाना प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करने वाले व्यापारी विद्यमान थे जो राज्य को कर देकर राज-कोष को अभिवृद्धि किया करते थे।

व्यापारिक नीतियाँ एवं सिद्धान्त—मध्ययुगीन कृष्ण कवियों ने अपने समय की प्रचलित व्यावसायिक नीतियों एवं सिद्धान्तों का भी वर्णन किया हैं। विद्यापति माल बेचने वाले व्यापारी को रूपक के सहारे समझाते हुए कहते हैं कि तुम कामदेव की दूकान खोलकर आये हुए रसिक ग्राहक से कोई माल मत छिपाना। फिर भी 'अनख' दिखाकर कुछ रस अवश्य छिपा रखना। कारण यही है कि संजोये हुए रत्न की कीमत अधिक होती है और आग्रह-पूर्ण ग्राहक हमेशा महंगा खरीदता है।[4] व्यापारी का यह विश्वास होता है कि जैसी उसकी 'बोहनी' (पहली बिक्री) होगी वैसी ही उसकी सारे दिन की अथवा उस माल की बिक्री होगी। इसीलिये बोहनी से पहले व्यापारी अपने माल की 'बानगी' (माल की उत्तमता दिखाने के लिये थोड़ी सी वस्तु चखाना) तक नहीं देता है। उन दिनों व्यापारी जिस धन से व्यापार प्रारम्भ करता था उसे 'मूल अथवा पूंजी कहते थे। 'नफा' 'लाहा' अथया लाभ प्राप्त करना व्यापारी का मुख्य उद्देश्य होता था। कभी कभी व्यापार में हानि भी हो जाती थी और उल्टे गाँठ का धन भी नष्ट हो जाता था। परन्तु ऐसा उसी मूर्ख व्यापारी के साथ होता था जो काँच सोना एवं मणि घुंघची में अन्तर न समझता अथवा उद्धव की तरह से यह भी न जानता कि निर्गुण जैसी

१, मध्यकालीन भारतीय संस्कृत, पृ ४८
२. सू० सा० (सभा), द० स्क०, प० सं० ३४३१
३. वही, वही प० सं० ३८९०
४. विद्यापति-पदावली, पृ० ११५

'अकरी' वस्तु गाँवों में न वेची जाकर केवल शहरों में ही बेची जायेगी। कभी कभी कतिपय कारणों से वाजार मन्दा भी हो जाता है। कुचों के माध्यम से बाजार की उस वस्तु की जिसकी अधिक आवश्यकता होती है अधिक मूल्य और बाद में आवश्यकता कम होने पर उसे कोई ग्वालिन मट्ठे के मूल्य में भी नहीं पूछती है इस चर्चा द्वारा विद्यापति ने बाजार-भावों के उतार-चढ़ाव की ओर संकेत किया है। मंदी की स्थिति में जबकि ग्राहक माल को गले पड़े की वस्तु समझ रहे हों व्यापारी के सामने दो ही स्थितियां रह जाती हैं या तो वह मूली के पत्तों (ग्राहक की दृष्टि में सस्ती वस्तु) के बदले मुक्ता फल (अधिक मूल्य) न माँगे यानी कम दाम पर सौदा बेचे अथवा माल को अन्यत्र ले जाकर बेचे। गोपियाँ उद्धव को दूसरा उपाय सुझाते हुए कहती हैं कि ब्रज में मुक्ति का बाजार मंदा है। तुम्हारी एकमात्र पूंजी यह है। अतः इसे कहीं अन्यत्र लेजाकर बेचो।[1] निश्चय ही लाभ प्राप्त करने के लिये व्यापारी में इतनी समझदारी अवश्य होनी चाहिये कि वह अपने माल के लिये कोई अच्छा बाजार खोजे और केवल उसी में अपना माल बेचकर अधिकाधिक नफा कमाये। सदैव की भाँति उन दिनों भी व्यापारी दूसरे के माल को बुरा और अपने माल को अच्छा बतलाया करते थे। तभी तो महाकवि देव के उद्धव मन रूपी माणिक्य देकर खरीदे गये गोपियों के हीरा रूपी कृष्ण को कौड़ी का बतलाते हैं।[2]

सिक्के—उन दिनों किसी वस्तु को खरीदने के लिये या तो बदले में कोई वस्तु देनी पड़ती थी अथवा प्रचलित सिक्कों के रूप में उसका मूल्य चुकाना पड़ता था। क्रय-विक्रय की प्रथम पद्धति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन दिनों 'वस्तु-विनिमय' का प्रचलन भी विद्यमान था। परमानन्ददास की चन्द्रावली दधि के बदले में गज मोती का हार पाने की बात कहकर तत्कालीन विनिमय-पद्धति को प्रकट करती है।[3] मूल्य का अवबोध कराने वाले तत्कालीन सिक्कों में रूपै टका, दाम, कौड़ी, दमरी आदि परिगणित किये जाते हैं।

---

१. सू० सा० प० सं० ३७२४

२. देव-काव्य-रत्नावली, पृ० १३०

३. परमानन्दसागर, ४११

(१) **रूपा अथवा रूपै**—मध्ययुगीन कृष्ण काव्य में चांदी का सिक्का रुपया कहलाता था। आइने अकबरी में चांदी के गोल और वर्गाकार दो प्रकार के सिक्कों को रूपया कहा गया है। सूर ने रूपै का प्रयोग सामान्य अर्थ में एवं परमानन्ददास ने 'रूपये' का प्रयोग सिक्के के अर्थ में किया है। बिहारी ने अंक के दाहिनी ओर बकारी लगा देने पर दामसे रुपया होने की बात कही है।

(२) **टका**—'टका' शब्द पर 'ब्रज भाषा सूर-कोश में दो प्रकार से विचार किया गया है। एक तो टका उन्होंने चांदी के पुराने सिक्के अथवा रुपये को माना है और दूसरा दो पैसे को टका कहा है। मीरा ने एक मोती का मूल्य लाख टका निश्चित किया है। राधा की माता ने खोई हुई 'मोतिसिरी' को लाख टके की बतलाया है। कृष्ण के जन्म पर यशोदा दाई को नेग में लाख टका भी देती है। उन्नीसवीं शताब्दी से टका अधिकतर दो पैसे अथवा अधन्ने के रूप में अधिक व्यवहृत हुआ है। औरंगजेब के काल में चाँदी की कीमत कम हो जाने से आधा टंक पूरे रुपये के बराबर घोषित कर देना इस बात का सूचक है कि उन दिनों टंका या टका चांदी के सिक्के के रूप में प्रयुक्त होता था। निश्चय ही हमारे निर्दिष्ट काल में 'टका' रुपये एवं दो पैसे दोनों ही अर्थों की प्रतीति कराता है।

(३) **दाम**—आइने अकबरी में 'दाम' को ताँबे का सिक्का बतलाया हैं जो रुपये के चालीसवें भाग के बराबर होता था। डा० नगेन्द्र ने 'रीतिकाव्य की भूमिका' में एक स्थान पर ८८० करोड़ दामों को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के २२ करोड़ रुपयों को बराबर बतलाकर ४० दामों की कीमत एक रुपया ही मानी है।[1] डा० भगवतशरण उपाध्याय 'दाम' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए लिखते हैं कि 'मुद्रा' या सिक्कों का इस देश में पहले पहल इस्तेमाल ग्रीकों ने ही किया : उसके पहले चिन्ह टांके हुए सिक्के चलते थे, ढाले हुए नहीं। ग्रीकों ने ढाले हुए सिक्के चलाए। उनको गोल, समान आकार और तौल दिया। उनको वे लोग 'द्रख्म' कहते थे। बाद में वह 'द्रम्म' कहलाने लगा जिससे हिन्दी का 'दाम' शब्द निकला।[2] मुगल काल में दाम की

१. डा० नगेन्द्र, 'रीतिकाव्य की भूमिका,' पृ० १

२. सांस्कृतिक भारत पृ० १३५

तौल को स्पष्ट करते हुए वासुदेव उपाध्याय लिखते हैं कि शेरशाह ने ३२५.५ ग्रेन तौल में तांबे का दाम तैयार कराया। मुगल बादशाह अकबर ने इसका स्वागत किया और वाणिज्य की उन्नति के लिये दशमलव रीति का समावेश किया।···औरंगजेब के शासन काल में चाँदी की कीमत पहले से कम हो गयी और तांबे की बढ़ गयी: इसलिये दाम (फलुस) की तौल २२० ग्रेन के बराबर कर दी गयी।[1] कृष्णभक्त कवियों ने 'दाम' का बहुत प्रयोग किया है। राधा की 'मोतिसिरी' में लगे एक एक नग का मूल्य 'सत-सत दाम' के बराबर था:[2] नन्ददास ने दाम खर्च करने की बात कहकर इसका प्रयोग सिक्के के अर्थ में किया हैं।[3] परमानन्ददास ने भी दाम का प्रयोग सिक्के के अर्थ में किया है।[4] बिहारी ने अंक के दाहिनी ओर बकारी (रुपया की अभिद्योतक टेढ़ी लकीर) लगा देने पर दाम से रुपया होने की बात कहकर इसका सिक्के के अर्थ में प्रयोग किया है।[5] गोपियों ने एक स्थान पर कुब्जा के प्रति अपनी झुंझलाहट व्यक्त करते हुए उसे चाम के दाम चलाने वाली कहा है।[6] इतिहास प्रसिद्ध एक घटना के आधार पर हुमायूं के राज्यकाल में भिश्ती के आदेश में चाम के सिक्के चलाये गये थे। सूर ने 'चाम के दाम' केवल किंवदन्ती के रूप में ग्रहण किया है। नागरीदास की गोपियाँ मुरली के द्वारा चाम के दाम चलाने की बात कहकर उसका प्रयोग झूठे सिक्के के अर्थ में करती हैं।[7]

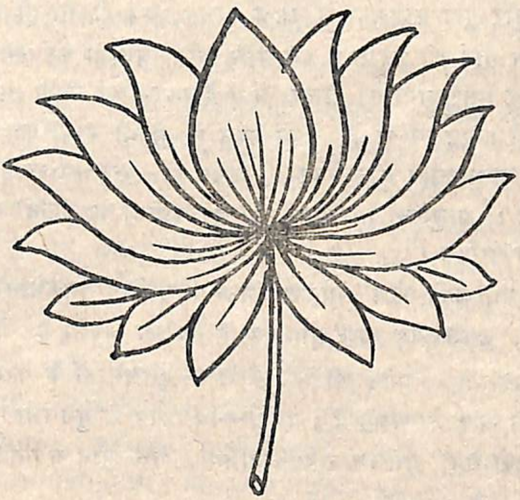
दमरी—आइने अकबरी में दाम के आठवें भाग को 'दमड़ी' कहा हैं।[8] सूर ने लोभी व्यक्ति को 'दमरी पूत' की संज्ञा देकर इस सिक्के के प्रचलन की ओर संकेत किया है:[9]

---

१. भारतीय सिक्के पृ० २१८--१९
२. सू० सा० (सभा), द० स्क०, प० सं० १९७२
३. नन्ददास–ग्रंथावली, पृ० ३१७
४. परमानन्दसागर, १४
५. बिहारी--रत्नाकर, दो ४४२
६. सौत चाम के दाम चलावति : सू० सा० (सभा), द० स्क० प०सं० ३६३९
७. 'ब्रजमाधुरीसार', पृ० २०२
८. आइने अकबरी पृ० ५७
९. सू० सा० (सभा), प्र० स्क०, प० सं० १८६

कौड़ी—मध्ययुगीन कृष्ण भक्त कवियों ने 'कौड़ी' शब्द का प्रयोग तुच्छ वस्तु का मूल्य बतलाने में प्रयुक्त किया है। सूर की दृष्टि में कौड़ी के लिये परिश्रम करने वाले नितान्त तुच्छ हैं। बिना कृष्ण के गोकुल का मूल्य 'कौड़ी' के बराबर भी नहीं है। 'दधि-दान' प्रसंग में दानी बनकर कृष्ण गोपियों से कौड़ी कौड़ी वसूल कर लेने की बात कहते हैं। श्री रामचन्द्र वर्मा के विचार से 'कौड़ी' का तात्पर्य अधीनस्थ राजाओं द्वारा सम्राट को दिये जाने वाले कर से भी होता था। उस समय कौड़ी का प्रयोग भारत में अनेक प्रदेशों में सिक्के के रूप में ही होता रहा होगा।

तौल के परिमापक बाट—मीरा ने तौल के मापक 'टंक' और 'रत्ती' जैसे छोटे छोटे बाटों की ओर संकेत किया है। श्री ब्रजरत्नदास ने टंक की तौल तीन-चार माशा बतलायी है। इनके अतिरिक्त मध्ययुगीन कृष्ण काव्य 'में अन्यान्य तौल के परिमापक बाटों की ओर किसी प्रकार का संकेत नहीं हुआ है। सूर ने गुंजा' से सुमेर के तुलने की बात कहकर गुंजा (घुंघची) को भी एक छोटे बाट के रूप में प्रयुक्त किया है।



हिंदी के मुसलमान कवि

डा० पुरुषोत्तमदास अग्रवाल

वर्षों पूर्व भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित पंक्ति "इन मुसलमान कवि जनन पै, कोटिन हिन्दुन वारियै" पढ़ने का अवसर मिला था, पर अपने अज्ञान के कारण उस समय इस पंक्ति का महत्व ज्ञात न हो सका। बुद्धि बार-बार यही सुझाती थी कि हिन्दी काव्य रचना अरबी, फारसी के वातावरण में जन्मे और पले इन मुसलमानों के वश की बात नहीं हो सकती वे भला हिन्दी में इतनी विदग्धता कैसे प्राप्त कर सकते हैं जिसके लिए हरिश्चन्द्र जी को उपर्युक्त पंक्ति लिखनी पड़ी थी। पर आज इस महान कलाकार की सचाई और गुण ग्राहकता के समक्ष मस्तक स्वयं ही नत हो जाता है।

अध्ययन मार्ग की प्रवृति ने इस पंक्ति की यथार्थता को स्पष्ट कर दिया है। आज इन मुसलमानों का हिन्दी प्रेम देखकर मन उनके समक्ष श्रद्धा से झुक जाता है। मुसलमानों के राज्य काल में हिन्दी काव्य का इतना वैभव कवियों की इतनी लगन और निष्ठा निश्चय ही भारतीय साहित्य में गौरव का विषय है। आधुनिक भारतीयों को इन कवियों के हिन्दी भाषा प्रेम से प्रेरणा लेनी चाहिए।

"मुसलमान कवि-कोश" नामक ग्रंथ के लिए जिन मुसलमानों की रचनायें प्राप्त हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट हो गया है कि इस दिशा में शोध की बहुत अधिक गुंजाइश है। अनेक शीर्षकों से इन मुसलमानों के काव्यों पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यथा:—बिलग्राम के मुसलमान कवि, बादशाहों की हिंदी सेवा, मुसलमान कवियित्रियाँ, मुसलमान संत-कवि, गुजरात

के मुसलमान कवि, दक्खिनी हिन्दी और मुसलमान कवि, कृष्ण भक्त मुसलमान कवि, मुसलमान रीतिकार और शास्त्रकार, स्फुट मुसलमान कवि आदि।

मैंने अपनी रचना 'मुसलमान कवि-कोश' में कुल तीन खंड किए हैं। प्रथम खंड में इन मुसलमानों की काव्यगत प्रवृत्तियों की भूमिका है जिनमें उनका वर्गीकरण, रचनाओं का विभाजन और उनकी सामूहिक विशेषता एवं प्रेरक कारणों की चर्चा की है। दूसरे खंड में अकारादि क्रम से कवियों का नाम, अति संक्षिप्त जीवन परिचय एवं रचनाओं का संकेत तथा गुणों का विश्लेषण किया गया है। तीसरे खंड में कवियों की कृतियों से कुछ पंक्तियां उद्धृत करके उनके काव्य वैभव एवं रचना चातुरी की बानगी प्रस्तुत की गई है। पुस्तक लगभग तैयार हो चुकी हैं। केवल उसे अन्तिम रूप देना शेष रह गया है। इस निबंध द्वारा इन मुसलमान कवियों के नामों को हिन्दी जगत के समक्ष लाना मेरा ध्येय है। अकरादि क्रम से नाम इस प्रकार है:--

अकबर, अकबरखाँ अनवरखाँ, अनीस, अदारंग, अब्दुल अलीम 'आशी' अब्दुल्लाह 'दक्षन' अब्दुल जलील, अब्दुल रहमान 'प्रेमी', अब्दुल रहीम खानखाना, अमीन, अमीन गूजरी, अमीर बुन्देलखण्डी, अलबेली अली ? अलाबख्श अलीनम, अल्लीखाँन, अलीमुहीव खाँ 'प्रीतम' अहमत (आगा), अहमदशाह (दिल्ली सम्राट) याकूबखाँ, आजम. आजमखाँ, आजमशाह आजिज, आलम (ब्रजवासी). आलम (अकबर कालीन), आलम (पंजाबी) आलम (सुदामा चरित्रकार), आलम बेगम, आलमगीर प्रथम, आलमगीर द्वितीय आदिल, आसिफ खाँ, आसी, इब्निशाती, इब्राहीम इलाही वख्श, इंशाअल्ला खाँ, ईसख मिर्जा, ईसवीखाँ, ईसुफ खां, उसमान, कदर, कवीर, कमाल कमाली (संत) करीम (प्रथम), करीम अली, करीम द्वितीय, काजी अनवर मियां ज्ञानी, काजी कदम, काजिम अली, काजी महमूद, काजी महमूद दरियावी, काजी मुहम्मद, कादर पिहानी वाले, कादिर वक्स (पिहानी), कारे खाँ फकीर, कारेवेग फकीर कासिम, कासिम द्वितीय कासिमशाह (वाराबंकी) फिशवर अली, कुतुबन, कुदरतुल्लाह खान, खान सुल्तान, ख्वाजावंदा निवाज, खिर्दमंद अली, खैराशाह, गरीब, गरीबदास, गवासी, गुलाम हसन पीर, गूदर शाह, गेतीआरा बेगम, जमाल, जमालुद्दीन, जमीर जलालुद्दीन, जलील (बिलग्रामी), जहांगीर, जहाँदारशाह, जायसी, जुल्फकार, जैनुद्दीन अहमद, जेबुन्निसा बेगम, तबई, ताबाँताज, तान तरंग खाँ, तानसेन, तालिब

शाह, दरिया साहब (बिहारी), दरिया साहब (मारवाड़ी) दरियाव जी, दादू दयाल, दाना, दानिश मंद खाँ, दानियाल, दाराशिकोह, दिल, दिलदार, दीन दरवेश, नजीव खाँ, नजीर अकबरादि, नवखान, नबी, नबीदीन, न्यामत खां (जानकवि), निजामुद्दीन महानायक, निवाज (बिलग्रामी), निजामी, नूरुद्दीन, नूरुद्दीन, नूर मुहम्मद, नूर पनाह अली, पावंद बेग, पीरुद्दीन, प्रेमी यवन, फहीम (अबुल फजल), फैजी, फाजिल अली, फतेहशाह, फायज, बकसी, बख्तावर, बहमन, बारक, बेखबर, बखेतस, बन्देअली, बलिराम (शरभंग) बषना, बहादुरशाह द्वितीय, बाज बहादुर, बाजिंदा, बालकदास, बालकराम, बाबरी साहब, बुल्लेशाह, बीरूसाहब, मकसूद, मसकीनदास, महताब, महबूब, मुहम्मद, मुहम्मद अजीम, मुहम्मदअफजल, मुहम्मद अब–दुल्लाह, मुहम्मद आरिफ, मुहम्मद खाँ, मुहम्मदशाह, मुहम्मद शाह मुहम्मदखाँ वासिल, मीर अब्दुलवाहिद, मीरअहमद, मीर आजाद, मीर गाधी, मीररुस्तम अली, मीर हुसैन करीम, मीर अब्दुल्लाह, मीरन, मीर रुस्तम' मीरा हुसैनी मुहज्जम शाह, मुकिनी, मुबारक, (बिलग्राम), मुल्ला दाऊद, मुल्ला नुसरती, मुल्ला वजही मुश्तरी, मोहनशाह साईं, मंझन, यकरंग युसुफ खाँ, याकूबखाँ यार मुहम्मद रज्जव, रसखान, रसनायक (बिलग्रामी) रसरँग, रसलीन, सैयद (गुलाम नबी), रसिया नजीब खाँ, रूपवती बेगम, संत रोहल, लतीफ, लतीफ हुसैन, लालजी (रंग खान) वजहन, वाजिद' वाजिद अलीशाह, वली मुहम्मद, वहशत, वारण वहाब, शेख बहावदी, वाहिद, सआदत खाँ, सिकन्दर फिरंगी, सनद, सादिक, सम्मन, सलीम शाह सूर, सिपहदार खां, सुजान, सुजान राय, सुंदरकली, सुन्दरकली (लखनवी) सुलतान, सुलतान खाँ, सुलतान, सुलतान बाहू, सुलतान पठान, सुलतान मुहम्मद खाँ, सूदन, सूफीशाह और शेख नवाज, सैयद अहमद जुनेजी, सैयद कुरेश, अजीब, सैयद पहाड़, सैयद रहमतुल्ला, सैयद रोशन, सैयदशाह हासिम, सैयद हुसेन, सौदा, शहरयार शाह अब्दुल लतीफ, शाह अली, 'गाँवधनी' शाह अली मुहम्मद गुजराती, शाह आलम द्वितीय, शाह फकीर, शाह नजफ सलोनी, शाह मीरा जी, शाह-सिकन्दर जुल्फिकार, शुजाउद्दीन नूरी, शेख अब्दुल कुद्दूस गंगोही शेख अब्दुल वाहिद, शेख गदाई, शेख इनायतुल्लाह, शेख ऐनुद्दीन, गंजुल इल्म, शेख कुतुबन शेख खूब मुहम्मद चिश्ती, शेखनबी, शेख निसार, शेख नसीरुलहक, शेख नुरुद्दीन, शेख फरीद, शेख फरीद (गंज ए शकर) शेख बुरहानुद्दीन जामन शेख भुलनन, शेख रिज्जुल्लाह मुस्ताकी, शेख रंगरेजिर, शेखबहाउद्दीन, शेख शर्फुद्दीन माहिया मनरी, शेख शाह मुहम्मद और चम्पा, हरिहर, हस्त मुहम्मद हदातबेग, हसन, हाफिज, हासिम अली, हाशम शाह, हिम्मत खां हुसेन, हुसेन अली, सदानंद, हैदर, और होथी साहब।

इन कवियों के अतिरिक्त अन्य अनेक कवि इस सूची में नहीं आ सके हैं। यथा समय उनकी सूची भी प्रकाशित की जाएगी। यदि हिन्दी में शोध करने वालों को इससे कुछ प्रेरणा मिल सकी तो मेरा परिश्रम सफल होगा।

कवीन्द्र आचार्य सरस्वती कृत
कवीन्द्र कल्पलता

"एक नवशोधित ग्रंथ"

डा० गीताराम शर्मा

कवीन्द्र आचार्य सरस्वती शाहजहाँ के लब्ध प्रतिष्ठित दरबारी हिन्दी कवि थे। ये अपने समय के अच्छे विद्वान् एवं प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। ये केवल प्रशस्तिकार कवि के रूप में ही नहीं थे अपितु शाहजहां स्वयं भी इनकी प्रतिभा से प्रभावित था। जब शाहजहाँ ने प्रयाग और काशी पर जजिया कर लगाया तो कवीन्द्र आचार्य सरस्वती ने शाहजहाँ के दरबार में जाकर आग्रह पूर्वक कर समाप्त करा दिया था। शाहजहाँ ने इनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर इन्हे 'सर्वविद्यानिधान' की उपाधि से सम्मानित किया। करमुक्ति से प्रभावित होकर काशी एवं प्रयाग के विद्वानों ने भी कवीन्द्र आचार्य सरस्वती की भूरि भूरि प्रशंसा की थी।

कवीन्द्र आचार्य सरस्वती ने संस्कृत एवं हिन्दी के अनेक ग्रंथों की रचना की। इनके हिन्दी-ग्रन्थों में कवीन्द्र कल्पलता, योगवसिष्ठ-सार तथा समरसार जैसे ग्रन्थों का पता चला है। इन ग्रंथों में कवीन्द्र कल्पलता का प्रमुख स्थान है। इस ग्रन्थ का परिचय 'मिश्रबन्धु विनोद' तथा 'शिव सिंह सरोज' में उल्लिखित है। यह ग्रंथ शाहजहाँ के आदेश पर उसकी प्रशस्ति में लिखा गया है। यह हिंदी भाषा में लिखा गया एक सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें शाहजहाँ के साथ दाराशिकोह, मुराद, वेगम शाहजहाँ आदि की प्रशस्तियाँ हैं। शाहजहाँ की राजधानी शाहजहांनाबाद का भी वर्णन है।

कवीन्द्र कल्पलता की हस्तलिखित प्रति के मुख्य पृष्ठ पर सर्व प्रथम ओम लिखा है। तत्पश्चात् पुस्तक का नाम 'कवीन्द्र कल्पलता' 'भाषा कवीन्द्र कल्पलता' 'कवीन्द्र कवि कृत' लिखा है। 'कवीन्द्राचार्य भी कवीन्द्र का ही नाम था। संस्कृत भाषा के उच्च कोटि के विद्वान थे। सं० १६२२ में उपस्थित।" यह वाक्य कवीन्द्र आचार्य सरस्वती के संक्षिप्त परिचय के रूप में लिखा है। अन्त में इस हस्त लिखित पुस्तक के इसी पृष्ठ पर कैप्टेन शूरवीर सिंह के हस्ताक्षर भी हैं। इस ग्रंथ में इसका रचना काल या लिपि काल नहीं प्राप्त हुआ। इसमें स्थान-स्थान पर कवीन्द्र-आचार्य-सरस्वती के नाम से प्रसंगान्त पुष्पिकाएं भी लिखी हुई है। अंतिम पृष्ठ पर 'गोविन्द चरणां भजे महा लिखा है। इसके पश्चात् अन्तिम पुष्पिका नहीं है। अन्त में अन्य लिपि में दो संस्कृत श्लोक लिखे है। इनसे पुस्तक तथा रचयिता की स्तुति का बोध होता है। संभवतः इन्हें किसी अन्य व्यक्ति ने लिखा है। अन्त में पुष्पिका तथा लिपि काल व रचना काल के अभाव में पुस्तक खंडित प्रतीत होती है।

भक्तिपाक छन्दों के संदर्भ में ग्रंथ के प्रारम्भ में संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के माध्यम से की गई स्तुतियाँ प्रमाण स्वरूप हैं। सर्व प्रथम सरस्वती वंदना इस प्रकार है :—

संस्कृत माध्यम से स्तुतिः—

उर्द्धवपद्यानि भाषाणि पद्यानि कुरुते कृती ॥

इस छंद से ध्वनि रूप में स्पष्ट है कि कवि ने 'उर्द्ध व पद्यों' को किसी के आदेश पर 'भाषापद्यानि' के रूप में प्रस्तुत किया। अनेक देवताओं की स्तुति हिन्दी माध्यम से इस प्रकार की गई है :—

हिन्दी माध्यम से स्तुतिः—

गुरु गनपति सकर सिवा विष्णु दिनेसुर लेषि।
मनसा वाचा कर्मणा प्रणभो सुरति विशेषि ॥

भक्ति परक छन्दों के विषय में इस ग्रंथ का "तत्व ज्ञान विषयक पद्यानि" का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना कवि ने षड्दर्शन, उपनिषद्, श्रीमद् भागवत् गीत के आधार पर की है। निर्गुण ब्रह्म के तो अनेक चित्र प्रस्तुत किये गये है। उनमें से एक चित्र है :—

विलेपनि अगुन निरंजन निरालम्ब व्यापक निराधार।
परमेसुर परम गति महाप्रभु संपूरन परमानन्द अपरंपार ।।

गीता में विद्यमान 'यां निशां सर्वभूतानाँ' वाली उक्ति की अभिव्यक्ति इस प्रकार है :—

जागत है ज्ञानी जहां तहं सोवत सव कोई।
जहां जहां जागत रहै सोइ रहै तस लोई ।।

'सर्व ब्रह्ममयं जगत्' की विचार धारा को इस प्रकार व्यक्त किया गया है :—

सौनों भूषण होत ज्यौं फिरि भूषणौ सोई।
त्यो ही ब्रह्मै होत सब सर्वै ब्रह्म फिरि होई ।।

रीतिकालीन परम्पराओं के प्राण स्वरूप शृंगार रस के पद भी कवीन्द्र कल्पलता में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। नायिका अपनी सखी से कहती है :—

आलीरी प्यारे की चितवनि नेह से चितवति पाऊँ।

रीति काल में बहुपत्नी परम्परा का प्रचलन एक साधारण बात हो गई थी। तत्कालीन सम्राट शूर-वीरों, सामंतों के यहाँ पर अनेक रानियां होती थीं। उनके यहाँ एक रानी तो पतिवती रहती थी किन्तु दिन में वायदा करके वे उचित समय पर नहीं पहूंच पाते थे तो वह रानी खंड़िता होती थी। ऐसी ही खंडिता का रूप चित्रण देखिये :—

अनत रति मानि आये प्यारे प्यारी अ गे धरी आरती।
दछिन लछिन दुरावत ये कैसे छुटत छवि भई चार सी।

रीति काल की एक अन्य विशेषता नायिका भेद की परंपरा है। इसका उल्लेख भी इस ग्रंथ में मिलता है। हाँ नायिका भेद का सांकेतिक चित्रण ही किया गया है। यह नाम परिगणन सस्कृत भाषा के माध्यम से है। उदाहरणार्थ नायिका स्वकीया परकीया सामान्या वनिता, स्वकीया त्रिविधा मुग्धा मध्या प्रगल्भा च।······आदि।

विप्रलंभ शृंगार के छींटे भी इसमें स्थान स्थान पर मिलते हैं :—

दिनखिन में वीतत खिन दिन में होत दरसन विन दरसन पिय के
निसदिन जो दरसन पावैधनि सुहाग भाग ता पियके।

इन वर्णनों के अतिरिक्त कृष्णरति, चातुर्य, अष्टभाव अपस्मार, काम स्थिति, कुचमर्दन, फालगुनमास आदि के भी शृंगार परक वर्णन मिलते हैं।

कवीन्द्र कल्पलता प्रशस्ति काव्य के रूप में भी एक सफल रचना है। इसमें कवि ने शाहजहाँ, दाराशिकोह, बेगम शाहजहाँ, मुराद तथा दारा की पत्नी नादिरा की प्रशस्तियाँ प्रस्तुत की गई है। इस ग्रंथ का प्रमुख विषय शाहजहां की प्रशस्ति है।

इसके अतिरिक्त गजदान, वस्तुदान, क्षमादान, चेना-वर्णन, शाहजहाँ की विद्वत्ता, विजय शीलता, वीरता दया, दानवीरता आदि गुणों को प्रस्तुत किया गया है। कवीन्द्र आचार्य सरस्वती ने इसी सर्ग में शाहजहाँ को शत्रु भयक्षंयक, सर्वशक्तिमान, सूर्यसमप्रतापी, शत्रुंजय, पराक्रमशील, कीर्तिस्तंभ, शत्रु विनाशक प्रचंड तेजमय, दिग्विजयी, ब्रह्मा विष्णु तथा शिव की शक्तियों से युक्त बताया है।

शाहजहाँ के साथ ही उसकी राजधानी शाहजहाँनाबाद का भी वर्णन कवीन्द आचार्य सरस्वती ने किया है।

कवीन्द्र आचार्य सरस्वती ने जहाँ शाहजहाँ के शौर्य प्रताप तेज एवं वीरता के चित्रों का मूल्याँकन किया है वही उसके वैभव, सुख सौंदर्य एवं विलास प्रियता के भी अनेक चित्र मिलते हैं :--

कवीन्द आचार्य सरस्वती ने अपने इस ग्रंथ में जहाँ शाहजहाँ के ऐश्वर्य एवं वैभव का विस्तृत एवं गम्भीर वर्णन किया है वहां शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह का भी पर्याप्त प्रशस्ति परक उल्लेख किया है। ऐतिहासिक तथ्य प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि दाराशिकोह कवीन्द्र आचार्य सरस्वती का एक मेधावी छात्र था। वे इसकी प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित थे। इस ग्रन्थ में सरस्वती जी ने 'अथदारा साहि के कवित्त' तथा 'अथ पुनः दारासाहि कवित्त' प्रकरणों में दारा की विद्वत्ता, दानशीलता, वीरता, सौंदर्य, ब्रह्म ज्ञान, युद्ध वीरता आदि का वर्णन किया है: दारा तथा नादिरा का अभिट प्रेम इतिहासकारों ने भी गाया है। कहा जाता है कि वह प्रत्येक समय छाया के समान अपने पति के साथ रही।

दारा नादिरा योबेन जैसे सीताराम।
कीरति सूरति रति सुमति परमानंद के धाम ॥

प्रशस्तियों के अतिरिक्त एक पद बेगम शाहजहाँ, तीन पद गुण-गौरव की प्रशस्ति मैं भी लिखे हैं।

कवीन्द्र आचार्य सरस्वती के इस ग्रंथ में जहाँ प्रशस्तियों की भरमार है

वहाँ उसमें ऐतिहासिक तथ्यों का भी समावेश है। करमुक्ति की घटना, चतुर्दिग, विजय, दक्षिण विजय आदि का उल्लेख मध्य एशियाँ के भागों या आक्रमणों के प्रसंग इस ग्रंथ में विद्यमान है।

यह उल्लेख भी मिले हैं कि कवीन्द्र-आचार्य-सरस्वती मणि मणिक्यों के बहुत ही योग्य पारखी थे। इस ग्रन्थ में भी मणि मणिक्यों की परख करने के लिये अनेक रूप लिखे गये हैं।

स्वर्णं रजतं मुक्ता राजवर्तं प्रवालकम्।
पंचरत्नमिदं ख्यातंमिति पूर्वं मनीषिणः।,

रत्न परीक्षायाँतु

... ...

जलबिदव, वज्र, पद्मराग, इन्द्रनील, मटकत, पुष्पराग, वैडूर्य गोमेद स्फटिक, लसन, प्रवाल, मुक्ता, राजवर्त रक्तक केचितेतानि चतुर्दश रत्नान्याहु।

उक्त ऐतिहासिक तथ्य जो सामान्यतः अनुपलब्ध है वह इस ग्रंथ से प्रमाणित हो जाता है।

यह कहना समीचीन होगा कि कवीन्द्र आचार्य सरस्वती कृत कवीन्द्र कल्पलता एक महत्त्वपूर्ण नवशोधित ग्रन्थ के रूप में प्राप्त हुआ। इस विषय में पहले वर्णन किया जा चुका है कि इस ग्रन्थ का उल्लेख मिश्रबन्धु विनोद तथा शिव सिंह सरोज में हुआ है। उनग्रथों के उद्धरण इस लेख में प्रसंगानुसार प्रस्तुत किये गये हैं। सम्भवतः उस समय यह ग्रंथ प्राप्त था और बाद में यह अनुपलब्ध रहा हो क्योंकि बाद के ग्रन्थकारों ने इसका उल्लेख नहीं किया। सौभाग्यवश श्री हरिदत्त शर्मा जी की विशेष कृपा एवं कैप्टेन शूरवीर सिंह जी के सौहार्द से यह ग्रंथ मुझे प्राप्त हुआ। ऐसी स्थिति में मेरा पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि वहुमुखी प्रतिभा संपन्न काव्य ग्रंथ को प्रकाश में लाने के लिये गण्यमान महानुभावों के प्रति सविनय यह लेख प्रस्तुत करूं।

यह भी कहना उचित ही होगा कि इस लेख में मैंने ग्रंथ का महत्व प्रस्तुत करते हुए एक शब्द-चित्र बनाने का प्रयत्न किया है। इस हस्त लिखित ग्रन्थ के मुख्य पृष्ठ का वर्णन करके इसमें प्राप्त भक्ति कालीन प्रभाव, रीतिकाल की छाप, प्रशस्ति परक रूप राजधानी वर्णन शाहजहाँ के वैभव सुख एवं ऐश्वर्य का चित्रण दारा शिकोह की प्रशस्ति, ऐतिहासिक तथ्य, मणि माणिक्य वर्णन आदि को सोदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यदि विद्वज्जनों ने मेरे इस परिश्रम के प्रति सौहार्द प्रकट किया तो मैं अपने परिश्रम को धन्य समझूँगा तथा भविष्य में अनेक महत्वपूर्ण रत्न ग्रंथों को सप्रयास प्रस्तुत करूंगा। इससे हिन्दी साहित्य की कुछ सेवा हो सकेगी। राष्ट्र भाषा की सेवा के रूप में कुछ राष्ट्र सेवा का लक्ष्य पूर्ण हो पायेगा।

रीतिमुक्त कविता एवं छायावादी कविता का तुलनात्मक अध्ययन

डा० त्रिलोकीनाथ श्रीवास्तव

रीतिकाल में भाव वस्तु एवं शिल्प की नवीनता एवं स्वच्छन्दता को लेकर जो कवि वर्ग सामने आया, उन्हें 'रीतिमुक्त कवि' के नाम से पुकारा गया। उनके प्रभाव की चर्चा छायावादी कवियों पर भी की गई। दो सौ वर्ष बाद सर्वथा भिन्न युगीन परिस्थितियों एव साहित्यिक परम्पराओं के होते हुए भी, भाव, वस्तु एवं शिल्प में आश्चर्यजनक साम्य विचारणीय है।

ये दोनों काव्यधारायें रीतिवद्ध वातावरण में ही विकसित हुई हैं। दोनों का काल साम्राज्यवाद के पतन और संघर्ष काल था, जिसमें सामन्तीय भोग विलास चरम सीमा पर था। जातीय अधः पतन, आपसी वैमनस्य एवं संघर्ष, धोखा, छल-कपट अदूरदर्शिता, और शौर्य विहीन स्वार्थी मनोवृत्ति दोनों कालों में सक्रिय थी। जन-जीवन की घुटन में नवयुवक वर्ग की क्रान्ति भावना ही दोनों काव्यधाराओं का मूल कारण बनी।

रीतिकाल का तत्त्व-चिन्तन विहीन, आडम्बर युक्त रसिक धर्म और आधुनिक युग का व्यावहारिक नवीन दर्शन, दोनों धाराओं पर प्रभाव डालता रहा। साथ ही स्वछन्द प्रेम वर्णन की साहित्यिक परम्परा ने रीति मुक्त कवि को और द्विवेदी युगीन मर्यादित शृंगार में विकसित 'तरुणोपदेश' जैसे स्वच्छन्द शृंगार ने छायावाद पर प्रभाव डाला।

सामाजिक नैतिक पतन, मुक्त इन्द्रिय लिप्सा दोनों युगों की विशेषता है पर छायावादी युग का समाज नव जागरण की ओर बढ़ रहा था—

फारसी काव्य की गजल शृंगारिकता, गुलो बुल-बुल, शीरी-फरहाद और लैला-मजनू की साहसिक प्रेम की परम्परा ने रीतिमुक्त कवि को प्रभावित किया है, तो यही परम्परा उर्दू के माध्यम से छायावाद तक आई है। सूफी प्रेम उत्कृष्टता एकनिष्ठता, सतत अनन्यता आदि ने भी दोनों को प्रभावित किया है।

रीति मुक्त कवि यदि बौद्धिक ह्रास युग में पनपा तो छायावादी काव्य बौद्धिक संघर्ष के काल में। अतः दोनों ही प्रकार के कवियों ने अपने को अपराजेय घोषित करके सर्वथा स्वच्छन्द मार्ग का अनुसरण किया।

रीतिमुख्त कवियों में जालम, बोधा, घनानन्द और ठाकुर ही मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त रसखान और द्विजदेव की रचनाओं की भाव-भूमि भी पर्याप्त स्वच्छन्द रही है, अतः उन्हें भी इस श्रेणी में गिना जाता हैं।

छायावाद आधुनिक युग की एक साहित्यिक क्रान्ति है, जिसने परम्परागत रीतिवद्धता को तोड़कर नया मार्ग प्रस्तुत किया है। हमने छायावाद के प्रमुख चार कवि प्रसाद, पन्त, महादेवी और निराला को ही अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाया है।

इन दोनों ही काव्यधाराओं का मुख्य वर्ण्य शृंगार ही है जो परम्परागत नहीं सर्वथा स्वच्छन्द है।

इन कवियों का शृंगार लौकिक तथा अलौकिक का समन्वय है। रीतिमुक्त कवि का प्रेम शुद्ध धरती के स्त्री पुरुष का प्रेम है, जिसका आधार रूप और यौवन है। प्रबन्ध काव्यों में प्रेम की उच्च महत्ता के प्रतिपादन की बात कहते हुए भी, कहीं अलौकिक संकेत नहीं दिखाई देते। उनमें स्वच्छ प्रेम की महत्ता ही है। छायावाद की प्रेमानुभूति भी निजी एवं वैयक्तिक है, सामाजिक शालीनता (जो युगानुरूप थी) से झिझकते हुए भी ऐन्द्रिक वर्णन की कमी नहीं है, अतीन्द्रिय चित्रों में माँसलता का अभाव नहीं।

ऐन्द्रिक निजी अनुभूति को जहाँ रीतिमुक्त कवि ने राधा-कृष्ण के माध्यम

से गाया है, वहाँ छायावाद ने उसे प्रकृति पर आरोपित किया है जिनमें कपोल मर्दन, कुच-नीबी बन्धन, आलिंग–चुम्बन, परिरम्भण आदि व्यापारों में त्वचा मांस का प्रकार नितान्त भौतिक है।

फिर इन दोनों ही प्रकार के कवियों के प्रेम में भावात्मक उदात्तता भी विद्यमान है पर उसमें भी ऐन्द्रियता का लोप नहीं हो पाया है। छायावाद ऐकान्तिक प्रेम निष्ठा और विषमाचरण को न सम्भाल सकने के कारण, रीतिमुक्त कवि जैसी उदात्तता न ला सका, अतः वह वायवी सोपान पर चढ़ गया है।

रहस्यात्मक प्रेम की पूर्व परम्परा ने रीतिमुक्त कवि के प्रेम को कहीं-कहीं अतीन्द्रियता के आवरण में भी लपेट दिया है। छायावादी इस दिशा में अधिक आगे बढ़ा है, यह छायावाद के अलौकिक प्रियतम का ही भावात्मक रूप है। रीतिमुक्त कवि के राधाकृष्ण, छायावादी कवि की प्रवृत्ति केवल माध्यम हैं, उनके माध्यम से वर्णित शृंगार लौकिक ही हैं।

समग्र रूप से दोनों ही काव्य धाराओं का शृंगार नितान्त लौकिक ऐन्द्रिय एवं भौतिक होते हुए भी भावात्मक उदात्त भावभूमि पर चढ़ता हुआ, रहस्य भावना तथा भक्ति की क्षीण पारलौकिकता की रज्जु के सहारे ऊर्ध्वगमन करता हुआ भी प्रतीत होता है। रीतिमुक्त कवि न तो रहस्यवादी कवियों की भाव-तन्मयता को ग्रहण कर सके और न भक्त कवियों की एकनिष्ठता ही पकड़ सके। क्योंकि इनका प्रेम इनकी प्रेमिकाओं के चारों ओर ही केन्द्रित था, अतः इनका प्रेम आध्यात्मिक तो क्या पारिवारिक भी नहीं है, वह शुद्ध स्वच्छन्द है। इसी प्रकार छायावादी शृंगार भी शुद्ध लौकिक है।

इन दोनों ही प्रकार के कवियों के जीवन में असफल प्रणय की अनुभूति सतत दाहक थी। अतः उनका प्रेम उनके निजी प्रेम-पात्र के चारों ओर केन्द्रित है। दोनों ही प्रकार के कवियों ने लौकिक शृंगार की व्यंजना कथात्मक पात्रों के माध्यम से भी की है, और अलौकिक एवं अतीन्द्रिय पात्रों के माध्यम से भी। रीतिमुक्त कवि ने राधा, कृष्ण, गोपी आदि को चुना है, तो छायावादी कवियों ने राम, सीता, गोपी, कृष्ण को माध्यम से बनाया हैं।

विषय प्रेम को इन दोनों ही प्रकार के कवियों ने अपने निजी जीवन में भोगा और स्वच्छन्द ढंग से काव्य में उतारा है। प्रेम में उच्च कोटि की निस्वार्थता, ऐकातिकता एवं अनन्यता की सविशेष चर्चा की गई है।

दोनों ही प्रकार के कवियों की प्रेम संवेदना सर्वथा स्वच्छन्द हैं, इसने शास्त्रीय एवं साहित्यिक परम्परा का सहारा नहीं लिया।

रीतिमुक्त कवि का स्वच्छन्द प्रेम जहाँ तत्कालीन मुक्त यौनाचार से फूठी हुई प्रेम की किरण थी, वहाँ छायावादी काव का स्वच्छन्द प्रेम युगानुरूप शालीनता में लिपटा हुआ परिष्कृत स्वच्छन्द प्रेम है। संयोग के चित्र-जो अत्यल्प हैं परम्परागत नहीं सर्वथा स्वच्छन्द हैं। प्रेम-व्यापार की कृत्रिमताएं, दूती-सखी-मध्यस्थता, अभिसार, वचन-विदग्धता छल आदि चित्रित नहीं हैं। साथ ही वाणी, वेश और चेष्टा द्वारा संभोगेच्छा के प्रकट करने से लेकर आलिंगन-चुम्बन आदि व्यापार भी परम्परागत ढंग से नहीं कहे गये, उनमें भावावेश और मनोवेगों का अकुण्ठ प्रवाह ही चित्रित है। इन दोनों का प्रेम दार्शनाभिलाषा, प्रगाढ़ आसक्ति जनित है जिसमें सूक्ष्मता, अतीन्द्रियता, एवं भावात्मकता है। प्रेमानुभूति निजी, वैयक्तिक एवं स्वाभाविक तथा मार्मिक है। मनोरथ पूर्ति पर प्रिय मिलन पर भी अभिलाषा की पूर्ति नहीं होती, चाह की चटक फीकी नहीं पड़ती, साथ ही प्रेम में निस्वार्थ एक-निष्ठता, सतत अनन्यता पूर्ण समर्पण की भावना आदि कुछ ऐसी मनोहारी वृत्तियाँ मौजूद हैं, जिनका परम्परागत परिपाटी से मेल नहीं खाता।

वियोग भी इनका स्वानुभूत है, जिसमें मनोवेगों का अकुण्ठ प्रवाह-सर्वथा स्वच्छन्द है। छायावादी कवि लौकिक आलम्बन पर टिका न रहने के कारण और अशरीरी, वायवी काल्पनीक और प्रतीकात्मक रूप ग्रहण करने के कारण, रीतिमुक्त कवि जैसी स्वच्छन्द वृत्ति को नहीं समेट सका है।

विरह में स्वानुभूत, निजी, जीवन से छनकर आया हुआ है जो शास्त्रीय नहीं सर्वथा स्वच्छन्द है। इन दोनों ही प्रकार के कवियों के विरह में अध्यात्म एवं रहस्यानुभूति, फारसी-सूफी-प्रभाव, ऐकान्तिक-विषय प्रेम की पीड़ा और उसके अन्तर्गत विभिन्न अनुभूतियों एवं स्थितियों की वर्णना, भावात्मक उदात्तता एवं गम्भीरता, प्रिय के हित की कामना, अपने ही भाग्य को दोष, रूपासक्ति जनित रीझ, संयोग में भी वियोग, मौन व्यथा-चित्रण, नायक का विरहोन्माद आदि कुछ ऐसी स्थितियाँ हैं, जो सर्वथा नवीन एवं स्वच्छन्द हैं।

यद्यपि इन्हें भक्त नहीं माना जाता तो भी इनकी भक्ति भावना उच्च कोटि की है। ये प्रभु का महत्व, उसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं और उसके चरणों में शरण माँगते हैं। निज कल्याण की भावना से युक्त वन्दनशील है,

वहाँ लोक कल्याणार्थ भी प्रार्थना करते हैं। अतः उन्हें केवल अर्थार्थी भक्त कहना उचित नहीं।

रीतिमुक्त कवि लौकिक प्रेम का गायक है, फिर भी भारतीय दार्शनिक चिन्तन और सूफी रहस्य की भावना ने रीतिमुक्त कवि को प्रभावित किया है, किन्तु इनका रहस्यवाद दार्शसिक चिन्तन से बोझिल एवं प्रतीकात्मक नहीं, अपितु स्वच्छन्द है। प्रकृति वर्णन पर भी उसका प्रभाव नहीं पड़ता, प्रेम-व्यापार का स्वरूप भी नहीं बिगड़ता और काव्य की सरलता भी अक्षुण बनी रही है।

अतः यह कहना उचित होगा कि दोनों काव्यधाराओं में पर्याप्त समता है, और छायावाद परम्परागत परिपाटी में विकसित एक साहित्यिक क्रान्ति है (ठीक वैसी ही जैसी रीतिकाल में रीतिमुक्त कविता) पश्चिम का कोरा अनुकरण मात्र नहीं।

★

असहयोग कई वार वैसा ही कर्तव्य वन जाता है, जैसा कि सहयोग। कोई भी अपनी वरबादी और गुलामी में सहयोग करने के लिए वाध्य नहीं।

— महात्मा गांधी

उत्तराखंड की नारी

बी. आर. टामटा

नारी किसी भी समाज का एक सहज प्रतिविम्ब है। आज के वैज्ञानिक युग में समाचार पत्रों, रेडियो, ट्रांजिस्टरों के माध्यम से समस्त विश्व के लोगों की भावनाएँ, आकाक्षाएँ व मूल्य समान होती जा रही हैं। यही कारण है कि पर्वतीय और शहरी जग-जीवन भी इन तीव्र धाराओं के थपेड़ों से अपने को अलग नहीं रख सका है। सैलानियों के प्रिय शहर मसूरी, नैनीताल आदि में प्राचीन भारत व आधुनिक विश्व की दो विभिन्न संस्कृतियों का टकराव या सम्मिश्रण देखने को मिलता है। नैनीताल व अल्मोड़े में किसी तीज-त्यौहार पर भारतीय संस्कृति के प्रतीक आरती सजाए, सुन्दर रंगीन सतील का लहँगा, सुन्दर ब्लाउज व रंगीन बूटेदार ओढ़नी का आधा घूंघट नाक में बड़ी नथ पहिने आभूषणों से सुसज्जित, पायलों की झनकार करती हुई मालरोड पर इठलाती नैना या नन्दा देवी के मन्दिर को आती जाती, गौर वर्ण सुन्दरी को देखकर स्वर्ग लोक की अप्सरा की कल्पना साकार हो उठती है। इन्हीं सड़कों पर शाम को 'बैल बाटम' व अन्य आधुनिकतम फैशन के कपड़े पहने, पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के नवीन विचारों में डूबी कोई फिल्मी गाना गुनगुनाते हुए अनेक किशोरियों के समूह मंडराते दिखाई देगें।

इन शहरों से बहुत दूर एक भोली-भाली ग्रामीण युवती को भी देखे जो गोधूली में सिर पर घास का भारी वोझ लिए पसीने से

लथपथ, अस्त-व्यस्त फटे कपड़ों में द्रुतगति से अपने घर को लौट रही है। अपना घर इसलिए कि कुछ साल पूर्व जब उसकी उम्र ग्यारह साल की थी उसकी शादी हुई थी। उससे कहा गया था कि यही उसका घर हैं। तब से वह मानती आई है कि उसका यही घर है। सम्भवतः घर पर उसका दूध पीता बच्चा, इजां-इजां या 'वोई-वोई' की आवाज लगाता रो रहा हो। उसके चेहरे पर एक अजीब प्रकारकी घबराहट व बेचैनी सी है। उसे डर है कि सास उसके देरी से लौटने पर डांटेगी, उसके घास के बोझ पर अनेक टीका टिप्पणी होगी, कहेगी कि उम्र होने पर भी अच्छी तरह से घास काटना नहीं आता या कहेगी कि ससुराल में तो मन ही नहीं लगता फिर घास क्यों न कम लाए। कहेगी सुबह से ही गई इतनी शाम को लौटी वह भी तिनके भर घास। गोठ में इतने जानवर। यह कोई प्रसाद तो है नहीं जो उनके सिर पर रख दिया जाये और वे सन्तुष्ट हो जायें। बेचारे जानवरों को तो भर पेट घास ही चाहिए। अगर कहीं उसका घास का बोझ बड़ा भी हुआ तब भी उसे इस बात पर ताने दिए जायेंगे कि घास में घास कम व पत्ती अधिक हैं या यों कहेंगी कि दिखाने के लिए अच्छी घास ऊपर रखी हैं और नीचे केवल सूखे तिनके हैं। या कहा जायेगा कि दिखाने के लिए फुला-फुला कर घास का बड़ा बोझ बनाया गया है। घर पहुँचकर उसे अभी ढेर सारे काम करने हैं! अगर गाय, बकरी जंगल से नहीं लौटे हों तो उन्हें ढूंढ़ने भी जाना होगा। सम्भवतः किसी बकरी को बघेरा ही कहीं उठा ले गया हो। भादों की इस अंधेरी रात में वह अकेले उसे कैसे ढूँढेगी। उसे दूर नदी से पानी लाना, गाय भैंसों को दुहना, धान कूटना, रात की रोटी पकानी हैं फिर बर्तन मलकर जानवरों को चारा देना यह सब काम भी उसे करने हैं। उसका भी कोई जीवन हैं? रात्रि के अन्तिम पहर से मध्य रात्रि तक वह एक मशीन की तरह काम करती रहती है। उसका सारा जीवन एक विशेष ढांचे में ढाल दिया जाता हैं। उसका भोजन, काम व मर्यादाएं सब निश्चित हैं। युग-युगान्तर से यह क्रम जारी हैं। उसका जीवन इतना व्यस्त हैं कि उसे स्वयं अपने विषय में सोचने का अवसर ही नहीं मिलता। अगर कभी कोई

बात सोचने में आती भी हैं तो केवल अपने मां के घर की याद। कितना प्यार उसे वहां मिलता था। बेचारी मां अब अकेले इतना काम कैसे करती होगी। कौन उसके छोटे भाई बहनो को देखता होगा। भाई बहनों की याद उसके आंखों में आंसू ले आती है, क्योंकि जब वह छोटी थी घर में छोटे भाई बहिनों की देखभाल भी वही करती थी। अगर उसके जीवन में कोई नवीन प्रकाश की किरण भी हो तो यही कि शायद 'बिखोती' के त्यौहार के अब केवल बीस दिन रह गए हैं। जब वह दो चार दिन के लिए मां के घर जा सकेगी। कितनी उत्सुकता व उत्कंठा से वह मां के घर जाने की बाट जोहती है इसकी कल्पना करना भी कठिन हैं। साथ ही उसे डर हैं कि कहीं इस त्यौहार पर उसके ससुराल वाले उसे मना न कर दें। उसे अपनी मां पर भी गुस्सा आ रहा है, पिछली बार जब वह मां के घर गई थी, विदाई के समय सिसकते हुए, जब मां के गले लगी थी तो उससे कहा था। भाईको बुलाने भेज देना। मगर उसने भाई को अभी तक नहीं भेजा। चैत्र का महीना लग चुका है। समस्त प्रकृति में वसन्त छा गया है। कफुआ पक्षी के गीतों मे जंगल पहाड़ व घाटियां गूंजने लगी हैं। उनकी सहेलियों के भाई, भिटोली, देने जा चुके हैं। एक छपरी में पूरी, दही व उसके लिए एक नया कपड़ा यह है 'भिटोली' जिसको लेकर प्रति वर्ष चैत्र में भाई बहिन के पास आता हैं। कितनी उत्सुकता से बहिन इसकी प्रतीक्षा करती है। लोक गीतों में लड़की की मां के घर की स्मृति, व भाई से मिलन की मन-भावनाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ हैं। लड़की को मां का घर नहीं दिखाई देता क्योंकि बीच में ऊँचे पहाड़ आ जाते हैं। एक गीत में वह ऊँचे पहाड़ों से कहती कि ओ ऊँचे-ऊँचे पर्वतमालाओं! तुम नीची हो जाओ जिससे कि मैं अपनी मां के प्रदेश को देख सकूँ।

"ओ ऊँची डांडयो, तुम निसी ह्वै जावां
में तें घर मैती का देश दिखावां"

कितनी टीस वेदना भरी है इन शब्दों में लोक जीवन निराशा अपमान व व्यथा से क्षुब्ध होकर वह प्रकृति की शरण लेती है। उसको चिड़ियों के कलरव में भी अपने हृदय की टीस सुनाई देती है

और लोक कथाएँ भी इसी वेदना की अभिव्यक्ति करती हैं। एक पक्षी बहुत करुण स्वर में जोरों से रट लगाता है। पक्षी के स्वर का पर्वतीय भाषा में रूपान्तर किया जाता हैं। "भै भूखे, मैं सी ती" अर्थात मैं सोती रही और मेरा भाई भूखा रह गया। कहा जाता है वर्षों बाद एक लड़की का भाई उससे मिलने आया वह पहाड़ी रास्ते से चलकर आ गया था जब वह बहिन के घर पहुँचा तो वह दिन भर के अथक परिश्रम से थकी गहरी नींद सोई थी, उसके भाई ने भी उसे नहीं जगाया जब प्रातः उसे मालूम हुआ कि उसका भाई भूखा रहा तो उसे इतना क्षोभ हुआ कि उसके प्राण पखेरू ही उड़ गए। तब से उसकी आत्मा जंगलों व पहाड़ों पर पक्षी का रूप धारण कर भटकर यही कहती हैं कि 'भै भूखे मैं सी ती' इसी प्रकार की करुण व्यथा की अनेक लोक कथाएं व लोकगीत हैं।

पर्वतीय नारी की व्यथा का कभी अन्त नहीं होता है! ससुराल उसके लिए एक कठोर कारागार के समान है जिससे बाहर निकलना कठिन ही नहीं पर असम्भव भी है। कभी-कभी जब यातनाएँ सहन-शक्ति से बाहर हो उठती है या मां के घर की स्मृति विचलित कर देती हैं तो वह जंगल से ही अपनी मां के घर भाग जाती हैं। पिता के डांट की डर से रात तक किसी गौसाले में छिपी रहती और जब उसे लगता है कि उसके पिता सो गए हैं तब वह धीरे से मां के पास पहुँच जाती हैं। मां उसके इस प्रकार के व्यवहार से दुखी हो उठती हैं वह दूसरे दिन धीरे से उसके पिता को यह समाचार पहुँचाती है उसका पिता उसको कोसते हैं कि उसके ससुराल से भागकर उसकी नाक नीची कर दी इससे तो अच्छा था यह मर जाती। उसको उसी समय ससुराल पहुँचा दिया जाता है या ससुराल वाले स्वयं ही आ जाते फिर उसे उसी कारागार में डाल दिया जाता है। जहां काम-काम और काम के सिवा और कुछ नहीं, भरी बरसात 'में कीचड़ व पानी से भरे खेत में धान की रोपाई करनी पड़ती है, मडुवे की गोड़ाई में तो थकान के मारे बेचारी का सारा बदन ही टूट पड़ता हैं। फिर उसे पहाड़ों से लकड़ी लाना, आधी रात्रि से चक्की पीसनी होती है इस पर भी सास के दिन रात के ताने। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिससे वह अपने हृदय की बात कह सके। पति भी परदेश से साल भर में

कभी एक आध बार घर आता है। उससे अगर कभी कुछ भूल से कह भी दिया तो इससे बेचारी का जीवन और संकट में पड़ जाता है। सास सारे गांव में कहती फिरेगी दो' दिन के लिए मेरा लड़का घर आया वहू ने उसको भी शान्ति से नहीं रहने दिया, झूठी सच्ची बातों कहकर सिखा दिया। ऐसी परिस्थिति में बेचारी करे भी तो क्या करे यह समझते हुए कि बेवसी ही जिन्दगी है, अपनी इस मूक वेदना को जीवन पर्यन्त हृदय में छिपाये रहती है और कभी कभी कोई अभागिन तो जंगल ही में रस्सी गले बांधकर जीवन लीला ही समाप्त कर बैठती है।

पवर्तीय जीवन में नारी का जीवन इतना कठिन व करुण है कि उसकी व्यथा का अन्दाज लगाना भी असम्भव है। अगर इसमें कोई अच्छी बात है तो यही कि नारी स्वयं इसकी कटुता से अनभिज्ञ है। वर्षों से यह क्रम चल रहा है। उसकी मां ने सास ने व उसकी वहिनों ने यही किया इसलिए वचपन ही से वह इस महान् तपस्वी जीवन के लिए तत्पर रहती है। इतना सब काम करने पर भी उसको भरपेट रूखी रोटी भी नसीब नहीं होती। नमक मिर्च के साथ सुवह मडुवे की दो मोटी रोटी, दोपहर को चावलों व भट से मिला तरस 'जौला' जिसमें पानी अधिक व चावल कम और रात्रि को भी रुखी मोटी रोटी। यह है बौड़ी (वहू) का भोजन वह अंगुली पर गिना सकती है कि उसने जीवन में कितनी बार पूड़ी, जलेबी या मिठाई खाई। उसके पास न तो नहाने के लिए साबुन है और न सिर में डालने को तेल उसके जीवन में बहुत कम ऐसे अवसर आये हैं जब कोई मनोरंजन हुआ, एक आध बार मेले में अवश्य गई होगी। वहां की दुकानों की सजावट व मिठाइयों की खुशबू की याद आते ही उसके मुंह में पानी भर आता है। वहां की छोटी से छोटी वात उसे मालूम हैं और वड़ी सरसता से वह अपनी सहेलियों को सुनाती है।

पर्वतीय नारी का जीवन भी हिमालय की तरह सरल व निर्मल होता है। झरनों के कलरव के साथ उनके गीतों की मीठी टीस राह चलते बटोही को भी पल भर के लिए मंत्र मुग्ध कर देती हैं। जंगल और पहाड़ ही उसकी वेदना को समझते है। जहां वे सहेलियों से

अपनी सास की परस्पर चर्चा करती है। प्रकृति के इस मनोहर प्रांगण में वह विनोद व हास्य रस पूर्ण उनकी नक्ल उतारती हैं और उनके कहकहों से सारी घाटी गूंज उठती है।

किसी ने कहा है कि पर्वतों में स्त्रियां यौवनावस्था को प्राप्त ही नहीं होतो हैं। वे या तो अबोध बालायें रहती हैं या फिर मां बनकर बुढ़ापे की देहली पर पहुँच जाती हैं। संयुक्त परिवार में जब जीवन अत्यधिक विषाक्त हो उठता हैं तो उसको अलग गृहस्थी सौंप दी जाती है। बेचारी अकेले क्या-क्या करे। जानों को देखें, या बच्चों को देखें। फिर पति तो बेचारा या तो परदेश में पलटन में है या कहीं छोटी नौकरी पर क्योंकि अभी उसने शादी का कर्ज भी नहीं चुकाया और जो कुछ वह भेजता है उसी से कपड़ा, तेल मुश्किल से चलता है।

नारी महान त्याग व तपस्या की मूर्ति हैं जिसके अथक परिश्रम से यहां की चट्टानें पिघल कर झरनों का रुप धारण करती हैं इन झरनों के कल-कल में यहां की नारी की वेदना के स्वर व आंसू दोनों ही मिलते हैं। ऐसे ही किसी नारी के जीवन को देखकर मैथिली शरण गुप्त जी ने कहा है :--

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आंखों में पानी"

★

भारतीय साहित्यकार संघ अंतरंग गोष्ठी-सुरक्षित पाण्डुलिपि

भारतीय इतिहास की समस्याएँ

डा० बुद्धप्रकाश (स्व०)

इतिहास जातियों की अमूल्य निधि है । इससे उनके व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है । भारत में सहस्राब्दियों से चली आ रही ऐतिहासिक परम्परा भारतीय राष्ट्र के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है । इसकी सफलताओं और असफलताओं, उन्नति और अवनति के क्रमों, और समस्याओं और विशेषताओं ने भारतीय राष्ट्रीय विकास को रंग रूप दिया है और उसके सामाजिक साँस्कृतिक निर्माण की प्रवृत्तियाँ निर्धारित की हैं । अतः यह आवश्यक है कि भारत के अतीत को उसके गतिशील वर्तमान क्रम के साथ सम्बद्ध किया जाए और इस आलोक में इसका अध्ययन किया जाए । इस अभिप्राय से भारत के अतीत के सम्पूर्ण, आलोचनात्मक, वस्तुपरक और पक्षपातरहित अध्ययन को उसके आधुनिक गतिविधियों के स्पष्ट, सुसम्बद्ध, वैज्ञानिक और सर्वाङ्गीण अनुशीलन के साथ समन्वित करना अनिवार्य है । अब तक देशी और विदेशी विद्वानों और अधिकाँश इतिहासज्ञों ने भारतीय इतिहास का विशुद्ध शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप भारतीय इतिहास के अनेक अन्धेरे स्थल और गम्भीर दरारें सुस्पष्ट युगों और सजीव कालों में बदल गए हैं । भारतीय जनता की सभी वर्तमान और भावी पीढ़ियाँ गम्भीर रूप से उनकी ऋणी रहेंगी और उनके धैर्यपूर्ण साक्ष्य संचय और वैज्ञानिक सिद्धाँतों के आदर्श से प्रेरणा प्राप्त करेंगी । किन्तु इतिहास के अध्ययन में उच्चतम वस्तुपरकता के स्तरों को सुरक्षित रखते हुए भी यह आवश्यक है कि उससे वर्तमान सम-

स्याओं को समझने और उनके सफल समाधान की चेष्टाओं के लिए लाभ उठाया जाए। उदाहरण के लिए आज भारत केन्द्रीकरण की शक्तियों और विकेन्द्रीकरण के तत्वों के द्वन्द्व का अखाड़ा बना हुआ है। प्रादेशिक प्रवृत्तियां और साम्प्रदायिक भावनाएं राष्ट्रीय बन्धनों और संघटन की कड़ियों को शिथिल करती जा रही हैं। प्रादेशिक झगड़ों और स्थानीय संघर्षों का कर्ण विदारक रव राष्ट्रीय एकता और संघटन की पुकार और प्रेरणा को तिरोहित कर रहा है। अतः ऐसे काल में जब हम सबको कन्धे से कन्धा मिलाकर खाद्य समस्या को सुलझाना चाहिए, योजना के लक्ष्यों को पूरा करना चाहिए और आर्थिक समृद्धि और सामाजिक न्याय के लिए यत्न करना चाहिए, हम प्रान्तों की सीमाओं को लेकर झगड़ रहे हैं, साम्प्रदायिक प्रश्नों पर विवाद कर रहे हैं और प्रादेशिक पचडों में अपनी शक्ति नष्ट कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि भेद द्वारा एकता के विनाश का बार बार प्रकट होने वाला क्रम, जिससे भारतीय इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी भली भान्ति परिचित है, फिर हमारे नेत्रों के सामने अवतीर्ण हो रहा है, और सीमा पार के संकटों को भूलकर, हम फिर उस उदासीनता और अविवेक की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जो स्थानीय मनोवृत्तियों और संकीर्ण दृष्टिकोणों को जन्म देती है। यही कारण है कि राष्ट्रीय सुरक्षा और पुनर्निर्माण की समस्याओं से विमुख होकर हम प्रादेशिक प्रतिद्वन्द्विता और साम्प्रदायिक वैमनस्य में उलझे पड़े है। यह समय है कि इतिहासकार अपने ज्ञान की ज्योति को वर्तमान की ओर अग्रसर करे और अपने बन्धुओं को यथार्थ दृष्टिकोण विकसित करने और वास्तविक लक्ष्यों और उद्देश्यों के लिए प्रयास करने की प्रेरणा प्रदान करे। अपने शुद्ध शास्त्रीय रूप में ज्ञान महान होता है किन्तु अपने व्यावहारिक पक्ष में यह अमोघ शक्ति भी है। शास्त्रीय ज्ञान के नीड़ से निकल कर इसे जनता की आवश्यकताओं से सन्नद्ध करना हमारा सब से बड़ा कार्य है। भारतीय साहित्यकार संघ इसी उद्देश्य को लेकर देश के सामने आया है। यह जिस इतिहास परिषद का परि-योजन कर रहा है उसका लक्ष्य भारतीय इतिहास का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना और उसे आधुनिक भारत की समस्याओं से जोड़ना है। किन्तु इस कार्य में हम सब की दृष्टि अत्यन्त वस्तुपरक, इतिवृत्तात्मक और आलोचना प्रधान होनी चाहिए। किसी भी स्थिति में हमें साभिप्राय मन्तव्यों तथा प्रचारात्मक विवादों की ओर नहीं जाना है।

यद्यपि हमारे विद्वानों ने साक्ष्य जुटाने, तथ्य जमा करने और इतिहास का वृत्त तैय्यार करने में भगीरथ प्रयत्न किया है, तथापि हमारे ज्ञान में अभी अनेक न्यूनताएं हैं। अभी तक हम परम्परागत अनेक अन्धविश्वासों और भ्रान्त कल्पनाओं के शिकार हैं। कुछ समय हुआ भारतीय लोगों को आदर्शवादी, स्वप्न द्रष्टा और कल्पना प्रधान कहने का रिवाज बढ़ा-चढ़ा था। यह कहा जाता था कि भारतीय सदा संसार को माया और मिथ्या कह कर उससे मोक्ष प्राप्त करने और निर्वाण के शून्यलोक में पहुंचने का यत्न करते है। यह एक सामान्य मान्यता थी कि भारतीय संस्कृति की विशेषता है रहस्यमय, परलोक परायणता और पलायनवादी धर्म-दर्शन का विकास। अभी तक हमारे मूर्धन्य विद्वान इन बातों का राग अलापते और उनके पद चिन्हों पर चलते दिखाई देते हैं। वे भारतीय संस्कृति के अति प्राकृतिक, वैज्ञानिक और भौतिक पक्षों की अवहेलना करते हैं जिनका लक्ष्य संसार को सत्य समझकर इसकी समस्याओं को यथार्थ दृष्टिकोण से समझना है। इसी प्रकार यह सर्वमान्य धारणा है कि भारतीय भूगोल-उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र ने इन भूखण्ड को संसार से पृथक् कर दिया है जिसके फलस्वरूप भारतीय जनता का बाहरी दुनिया से कोई सम्पर्क नहीं रहा और वह संकीर्ण, स्थानीय और स्थावर दृष्टिकोण में फंसी रही। इन बातों को दोहराते हुए हम भारतीय संस्कृति की उन गतिशील, प्रसरणात्मक और सार्वभौम प्रवृत्तियों को भूल जाते है जो उसे एक ओर हिन्द-एशिया, हिन्द-चीन और सुदूरपूर्व में ले गई और दूसरी ओर जिन्होंने उसे मध्य एशिया और पाश्चात्य देशों तक पहुंचाया। इस विस्मृति का कारण यह है कि साम्राज्यवादी आधिपत्य से विहीन साँस्कृतिक प्रसार के क्रम को हम ठीक से नहीं समझ पाते। भारतीय इतिहास के अन्य अभिनिवेश भी इसी प्रकार तथ्यपरकता से दूर हैं। उदाहरण के लिए यह बात कि वैदिक आर्य भारत पाकिस्तानी भूखण्ड में कहीं बाहर से आए, वैदिक संस्कृति सिन्धु घाटी की संस्कृति की उन्नति के बाद की बर्बरतामूलक प्रतिक्रिया है, बुद्ध ने केवल भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए उपदेश किया, अशोक ने राज्य के हितों को भिक्षु धर्म के लिए अर्पित कर दिया, गुप्त साम्राज्य के स्वर्णकाल में प्रत्येक व्यक्ति समृद्धि में ओत-प्रोत था, भारत के साम्राज्य सदा विदेशी आक्रमणकारियों की ध्वंस-लीला के शिकार हुए, भारत में राजपूत और मुस्लिम युगों में योरोप जैसी सामन्ती-प्रथा प्रचलित थी, तुर्क और अफगान साम्राज्य

निर्माताओं ने उत्तरी भारत में एक आर्थिक नागरिक क्रान्ति का सूत्रपात किया, मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलन थकी-मान्दी जनता को अफीम खिलाने के लिए चले, मुगल काल की जगमगाहट विकास और उन्नति का चरमोत्कर्ष है, अंग्रेजी शासन काल पूर्णतः पापमय अथवा पूर्णतः पुण्यगर्मित है, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में कोई गलती या भ्रान्ति नहीं हुई या लगभग दो दशाब्दियों के स्वातन्त्र्य-काल में हम पूरी तरह अनवद्य रहे—ये और भारतीय इतिहास की ऐसी ही अनेक समस्याएं खोज और अध्ययन करने योग्य हैं। उन्हें वास्तविक पृष्ठ भूमि में समझ कर उनसे आधुनिक प्रश्नों पर जो प्रकाश पड़ता है उसकी ओर ध्यान देना अनिवार्य है।

इतिहास की विकृति से राष्ट्र का व्यक्तित्व विकृत हो जाता है।

यम-यमी सम्वाद

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

ऋग्वेद के १०वे मण्डल का १०वाँ सूक्त यम-यमी संवाद के नाम से प्रसिद्ध है। अनेक विद्वान् इस सूक्त को भारतीय नाटय-कला और भारतीय रंग मंच का प्रारम्भ करने वाला मानते हैं। संवाद की दृष्टि से यह अत्यण्त मनोरंजक है। काव्य की दृष्टि से यह अत्युत्तम और रस-भरित है। पश्चिमी विद्वान व कुछ भारतीय विद्वान भी इसको भाई-बहिन का संवाद मानते हैं। उनका कहना है कि इससे पहले आर्य जाति में औरस भाई-बहिन की शादी हो जाती थी। यम ने यमी की विवाह की प्रार्थना अस्वीकार करके उस पुरानी चाल को समाप्त कर दिया। पश्चिमी विद्वान यम-यमी को भाई बहिन इस वास्ते मानते हैं क्योंकि आदम से हव्वा उत्पन्न हुई और उन दोनों ने इस सृष्टि को बढ़ाया। ईसाई धर्म के इस मत की यम-यमी सूक्त से वह अपने धर्म में कही बात का समर्थन करते हैं। किन्तु हिलेब्राँट सदृश पाश्चात्य विद्वान और डा० उषावर-वेलकर सदृश भारतीय विद्वान् यम को चन्द्र बताते हैं। इनके मत में यम-यमी सूक्त भी विराट् प्रकृति के एक नैसर्गिक रूप का वर्णन करता है।

हिलेब्राँट के मत की पुष्टि इस बात से भी होती है कि इस सूक्त का ऋषि यमी वैवस्वती (१,३,५-७, ११,१३)और यम वैवस्वत (२,४,८-१०,१२,१४) हैं। सूक्त में १४ ही मंत्र हैं। इस सूक्त का देवता भी यम वैवस्वत और यमी वैवस्वती है। वैवस्वत सूर्य का एक नाम है। अतः हिलेब्राँट और डा० वरवेलकर का मत अधिक युक्ति-युक्त और भ्रम-निवारक है। यह सूक्त वस्तुतः विराट प्रकृति के एक रूप का वर्णन करता है। यह सारा वर्णन आलंकारिक है।

यम एक वैदिक देवता है, इस सत्य को विस्मरण न करना चाहिए। ऋग्वेद के पहले और १०वें मण्डल में ही ५० बार यम का नाम आया है। यम तीन सूक्तों का स्वतंत्र रूप से देवता है। ऋग्वेद के १०वें मण्ड़ल में यम का बृहस्पति अग्नि आदि के साथ उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में यम का वर्णन इस प्रकार आया है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्य् अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु ॥
(१,१६४,४६)

इन्द्र, मित्र, वरुण, मातरिश्वा के साथ यम का उल्लेख है, और कहा गया है कि ये सब नाम वस्तुतः उसी एक परब्रह्म परमात्मा के हैं। ये नाम ब्रह्म की विभिन्न शक्तियों को बताते है।

अन्यत्र यम को अग्नि का मित्र बताया गया है। कहा गया है कि अग्नि का पता यम ने ही लगाया है, यथा—

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ॥
(१० ५१,३)

ऋषि यम का स्थान देवों के मध्य ही नहीं बताता, अपितु यह भी कहता है कि यम स्वतः एक देव है, यथा—

नरा वा शंसं पूषमगोह्यम् अग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसक्तुमश्विना ॥
(१०,६४,३)

यह सूर्यमास और चन्द्रमास के साथ यम का उल्लेख होना अर्थ पूर्ण है और हिलेब्रांट के मत की पुष्टि करता है। यम एक स्वतंत्र देवता है, स्वाधिकार से देवता है, यथा—

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुर्रहिरे ॥
(१०, ९२, ११)

यम साधारण वैदिक देवता नहीं। उसको सोम दिया जाता है। उसके नाम से हवि दी जाती है। वह दीर्घायु प्रदान करता है, यथा—

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्य् अग्निदूतो अरंकृतः ॥
(१०, १४, १३)

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥

(१०, १४, १४)

और आगे देखिए—

यमाय मधुमत्तमंराज्ञं हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृदभ्यः ॥

(१०, १४, १५)

वैदिक देवताओं में यम का कितना ऊंचा स्थान है, यह इससे स्पष्ट है। वह वैदिक मार्ग के प्रवर्तकों में से एक है। यम की इस महिमा को विस्मरण करके यम-यमी संवाद का विपरीत अर्थ लगाना क्या उचित है ?

यम राजा हैं। यमराज तो आज भी मृत्यु का देवता है। ऋग्वेद इस बात को इस रूप में विस्तार से कहता है—

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः।
यत्रामूर्यह्वती रापस्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥

(९, ११३, ८)

यह सूक्त आर्यजाति के जीवन के प्रति आस्था और आकांक्षा का एक सुन्दर प्रतीक है। यम लोक-संग्रह करने वाला है। लोकों का स्वामी हैं। मृतों को विश्रान्ति देता है। मृतकों के अन्तिम स्थान में सर्वप्रथम जाने वाला यम बताया गया है। ऋषि के शब्दों में—

परेयिवासं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवानत्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥

(१०, १४, १-३)

स्पष्ट है ऋषि यम को मृतकों का राजा कहता है, और पितरों के सुख के लिए यम को स्वाहा के साथ आहुति देने का विधान करता है। क्या यह यम को वैदिक देवता सिद्ध नहीं करता ? यह लोकसंग्राहक है और लोकों का स्वामी है, यह 'जनानां यम राजानं'' से प्रकट है।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यम पश्यासि वरुणं च देवम् ।।
(१०, १४, ७)

यमलोक जाते हुए वरुण दिखाई देता है। महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में कहा गया है कि जब युधिष्ठिर संदेह स्वर्गलोक को ले जाये जा रहे थे, तो तो उनके पीछे-पीछे कुत्ता भी चला आ रहा था। महाभारत ने उसको धर्म कहा है। पर वैदिक ऋषि यम को मृत्यु देने वाला कहता है, जो एक साधारण भारतीय की परम्परागत प्राचीन धारणा है, यथा—

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ।।
(१०, १४ ९)

यम-मार्ग में यमराज के अङ्गरक्षक के रूप में कुत्ते साथ-साथ चलते हैं। ये कुत्ते यम के रक्षक बताए गए हैं। विश्वास न हो तो यम ऋषि की इस वेद-वाणी को पढ़िए—

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ।।
(१०,१४,१०)

अथ च—

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन् त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ।
(१०,१४,११)

यम के ये दोनों अङ्गरक्षक कुत्ते अवश्य ही राह भर भौंकते चलते होंगे। क्योंकि यम ऋषि की प्रार्थना है कि राह भर में नर-द्रष्टा दोनों कुत्ते अपनी चारों आंखों से उसकी रक्षा करें। यम के दूत का भी कार्य ये कुत्ते हीं करते प्रतीत होते हैं। यद्यपि दूत का नाम "उदुम्बलौ,, बताया गया है —

"उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ।।"

जब सारी दुनियाँ सो जाती है, तब कुत्ते ही तो भौंकते रहते हैं और पहरा देते हैं। यम के अनुचर कुत्ते ही हो सकते हैं ? यम-यमी संवाद में यमी की विवाह की प्रार्थना को यह क्यों न माना जाय कि यम यमी को यमलोक ले जाने के लिए आया है, और यमी यमलोक जाना नहीं चाहती। अतः वह

यम को भूलोक में रहने के लिए ललचा रही है। चिकित्सक और मनोविज्ञान-शास्त्री मानते हैं कि मरणासन्न व्यक्ति पाँच मानसिक अवस्थाओं में से गुजरता है। पहली अवस्था है, जब वह मरने से इन्कार करता है। यम-यमी संवाद में यमी की इस पहली अवस्था का चित्रण है। वह जीना चाहती है, अतः यम को भी यमलोक जाने से रोक रही है। यमलोक और मृत्यु का राजा यम है यह असंदिग्ध है। राजा को प्रसन्न करने के लिए यमी आत्मसमर्पण के सिवाए और क्या कर सकती थी ?

साधारण भारतीय आज भी मानते हैं और विश्वास करते हैं कि घर में या पड़ोस में कोई भयंकर रोगी हो, और रात को कुत्ते सड़क पर रोनी आवाज में भौंके या उल्लू बोलें, तो इसको अनिष्ट-सूचक मानते हैं। प्रायः देखा गया है कि रोगी रात बीतते प्राण छोड़ देता है। इसको अन्धविश्वास कहा जा सकता है। पर इसका उद्गम ऋषि कपोत नैर्ऋत की यह वाणी है। इसमें यम के दो दूतों—उल्लू और कबूतर का वर्णन है :—

यदुलूको वदति मोघमेतद् यत् कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत् तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।
(१०,१६५,४)

यह यम वैदिक देवता है, तो इसका स्थान भी वहीं होना चाहिए। ऋषि गय प्लात यम का स्थान दूर आकाश में बताते हैं :—

नरा वा शंसं पूषणमगोह्यम् अग्नि देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि, त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ।।
(१०,६४, ३)

स्वर्ग में सविता के दो स्थान हैं और यम का एक है। यह अभिमत हिरण्यस्तूप आङ्गिरस का है—

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एक यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ।।
(१,३५,६)

कुमार यामायन ऋषि ने यम को देवताओं के साथ ढाक (पलाश) वृक्ष की छाया में बैठा बताया है—

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ।।
(१०,१३५,१)

ऋषि कुमार यामायन ने ही यम-सदन का नाम 'देवमान' बताया है :—

इद यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नालीरयं गीर्भिः परिष्कृत. ।।
(१०,१३५,७)

कण्व घौर ऋषि मृत्यु के मार्ग को यम का मार्ग मानते हैं —

यद् यूय पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन, स्तोता वो अमृतः स्यात् ।
मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्य पथा यमस्य गादुप ।।

(१,३८,४-५)

ऋषि देवश्रवा यामायनः ने यम के पिता का नाम विवस्वत बताया है और माता का नाम सरण्यू ।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ।।
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामदद्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत्तदासीदजहादुद्वा मिथुना सरण्यूः ।।

(१०,१७,१-२)

विख्यात वसिष्ठ ऋषि की मान्यता है कि यज्ञ-तन्तु का विस्तार यम से हुआ :—

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ।।

(७,३३,९)

अथ च—

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ।।

(७,३३,१२)

परन्तु मैकडानल, शोरोएडर, विंटरनिट्ज, पादरी हेरास, कीथ प्रभृति यूरोपियन विद्वानों को यम-यमी संवाद में मानव-समाज की उत्पत्ति भाई-बहिन के युगल से हुई इस ईसाई धर्म की मान्यता का समर्थन मिलता है। आदम और ईव से मानव-सृष्टि ईसाई मानते हैं, किन्तु वैदिक ऋषि अपने पृथक् नैतिक विचारों के कारण भाई-बहिन का संभोग नहिं दिखा सका।

यम-यमी संवाद के विषय में विद्वानों के ऐकमत्य न होने के कारण उनका पूर्वाग्रह है। आधुनिक भारतीय विद्वान अपने को विद्वान सिद्ध करने के लिए यूरोपियनों का अनुसरण करते हैं और भारतीय परम्परा का परित्याग करने में अपनी विद्वत्ता मानते हैं। यम-यमी संवाद से मिलती-जुलती वार्ता जिन्दावस्था और अन्य संस्कृतियों में मिलती है। अतः यम-यमी संवाद को मानवोत्पत्ति सम्बन्धी कथा मानने का आग्रह करते हैं। पाश्चात्य विद्वान वैदिक ऋषि को दोष देते हैं कि उसने तात्कालिक नैतिक कल्पना के कारण और उसके विरोध में जाने का साहस न होने के कारण यम यमी का संभोग नहीं दिखाया यूरोपियन विद्वानों की दृष्टि में यम पहला पुरुष है और यमी पहली स्त्री है। इसको शायद ही कोई विज्ञ व्यक्ति माने।

विचित्र बात यह है कि सब पाश्चात्य विद्वान भी एकमत नहीं हैं। कुछ यम—सूर्य, अग्नि या चन्द्र बताते हैं। "एहनी" का मत है—अस्ताचलगामी सूर्य को देखने वाला यम है। वह उदय होते सूर्य 'विवस्वान' का पुत्र है। सूर्य का मार्ग मानव जीवन मार्ग का सूचक माना जाता है। अस्ताचलगामी सूर्य और मृत्यु पथगामी मानव के वास्ते वेद एकसदृश शब्दों का व्यवहार करता है विवस्वान और यम, इन शब्दों का प्रयोग दृश्य और अदृश्य सूर्य के लिए किया गया है। मैक्समूलर (मौक्षमूलर) इस मत से सहमत हैं और मानता है कि अस्ताचलगामी सूर्य यम है और यह मृतकों का देव है।

वेबर भी इस मत से सहमत प्रतीत होते हैं। क्योंकि उनकी मान्यता है कि यम उदय होते दिवस का और यमी रात्रि का निदर्शक है। यम को अग्नि भी बताया है।

किन्तु कुहन व बेरमैन यम को वैद्युताग्नि का स्वरूप मानते हैं और यमी को मेघनाद का। राथ, हार्पकिस, ओल्डनवर्ग, शेग्मन, इत्यादि इससे सहमत नहीं। यम का दिव्य स्वरूप ये मानने को उद्यत नहीं। इनकी मान्यता है कि यम प्रथम मानव है और यमी के साथ वह मानवजाति का प्रथम उत्पादक है। वह पहला यज्ञकर्त्ता, पृथ्वी का राजा और अधिपति था। यम का निवासस्थान ही आर्यों का प्राचीन मूलस्थान है। यम सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, अतः वह सर्वप्रथम मरा भी। मृत लोगों की बस्ती उसने बसाई, जहाँ मृतलोक जाकर रहने लगे। यह पितृ पूजा का चिन्ह है। यमपूजा का वेद में यह पहला वर्णन है। इस धरती पर स्वर्ग युग का राजा यम था दूसरे जगत में चला गया उसके साथ ही अंगिरस भी गया।

(हिलेब्राण्ट और आयंगर सदृश विद्वान यम को चन्द्र बताते हैं। श्रीआयंगर के मत में, यमी रोहिणी है। यम - चन्द्र है इसकी निष्पत्ति इस तरह की की जाती है। यह सर्वमान्य है कि विवस्वान सूर्य देवता है। वैदिक पुराणकथा और विधि विधानों में यम और विवस्वान के मध्य परस्पर विरोध प्रदर्शित होता है। अतः यम—सूर्य नहीं माना जा सकता। यम सूर्य देवता न हो, पर एक देवता है, यह सन्देहातीत है। यम 'मर्त्य' नहीं है। पर चूंकि वह सर्व-प्रथम मरा, अतः वह "मर्त्य" है।

—यम को चन्द्र बताने वालों का कहना है कि सूर्य देवता की संतान है, पुत्र है। वह मरता है, इन दोनों में संगति ठीक बैठती है यदि यम को हम चन्द्रमा मान लें। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश और तेज पाता है। अतः वह सूर्यपुत्र हुआ। चन्द्रमा षोडश कलायुक्त है। ये कलाएं क्षीण होती रहती हैं। पूर्णिमा का चन्द्र द्वितीया को रेखामात्र ही रह जाता है। 'दूज का चाँद' कहावतों में शामिल हो गया है। चन्द्रमा घटता है, इसी को वैदिक ऋषि ने काव्यात्मक व आलंकारिक रूप दिया है। यथा -

को ददर्श प्रथमं जायमानम, स्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित को विद्वाँसमुपगात प्रष्टुमेतत ॥

(ऋ. १, १६४, ४)

विधुं वद्राणं समने बहूनाँ युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाऽद्या ममार स ह्यः समान ॥

(ऋ. १०. ५५. ५)

इस मत की पुष्टि डा० करवेलकर के मत में मानव वंश शास्त्र से भी होती है। चन्द्र के विकास और ह्रास से, इन दो अवस्थाओं से प्राचीन काल में लोग पुनर्जन्म की कल्पना करते थे। चन्द्र को मृत पितरों का अधिपति माना जाता था, चन्द्र को यज्ञ का दूत और यज्ञ हवि को देवताओं में वितरण करने वाला बताया गया है। यथा—

आप्त्यस्त्रित आङ्गिरस ऋषि का कथन है—

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।

(ऋ. १. १०५. ४)

कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व
आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ।

(ऋ. १. १०५. ५)

"विकसन शील पुराण कथा" के मानने वाले, यम को एक मानव मानते हैं। मानव उत्पत्ति के लिए यम ने आत्म बलिदान दिया, यह बात तो वैदिक विवस्वानादित्य कहते हैं। यथा—

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पति यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्व प्रारिरेचीत् ॥

(ऋ. १०. १३. ५)

यम ने अमरता का बलिदान करके देवताओं और प्रजा का कल्याण किया इस आत्म बलिदान से प्रजोत्पत्ति हुई। यज्ञ से सृष्टि हुई और मानव का जन्म हुआ, इस मान्यता को पुरानी जातियों की कथाओं में स्थान प्राप्त है।

जिन्दावस्था में यिमाँ शब्द आता है। यम और यिम को एक मान लेने पर इस धारणा को बल मिलता है कि यम द्विलिंगी है यम ने अपने को नर नारी में विभक्त किया। इस दृष्टि से यम मानव जाति का पिता माता जानना चाहिए। इसकी पुष्टि में यम यमी सूक्त का निम्न मन्त्र पेश किया जाता है—

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कुणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहु-मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥

(ऋ. १०, १०, १०)

यम ने यमी के प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया। बहिन की स्वैरविलास वृत्ति का यम द्वारा तीव्र विरोध करा कर ऋषि ने यह सूचित किया है कि

यम-यमी मानव जाति के प्रथम माता-पिता नहीं। किन्तु इसी सूक्त का तीसरा मंत्र इस मान्य भारतीय परम्परा के विरोध में पेश किया जाता है कि यम ही एकमात्र मनुष्य उपलब्ध था। यथा—

उशन्ति घा ते अमृतास एतद् एकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे, जन्युः पतिस्तन्व मा विविश्याः॥
(ऋ. १०, १०, ३)

अनेक धर्म-ग्रन्थों अवेस्ता-बाईवल आदि में और आईसलैण्ड, अफ्रीका, चीन, मैडागास्कर और टोडाजन (नीलगिरि पर्वत का निवासी पुराना कबीला) में यम-यमी संवाद सदृश कथायें विद्यमान हैं। यह होते हुए भी भारतीय परम्परा के यह सर्वथा विपरीत हैं। यम-यमी सूक्त का ऋषि भाई-बहिन के विवाह को त्याज्य मानता है। यम भारतीय जाति का पिता नहीं है। यह एक असंदिग्ध सत्य है। गेल्डनर और पिशल का ऋग्वेद के बारे में कहना हैं :—

ऋग्वेद भारतीय चरित्र का द्योतक ग्रन्थ है। यह भारतीय दस्तावेज है और इसकी व्याख्या इसी रूप में करनी चाहिए। अतः ऋग्वेद से किसी प्रकार की अभारतीय व्याख्या न की जानी चाहिए। अतः यम को मानवजाति का पिता मानने की बात सर्वथा निराधार ठहरती हैं, क्योंकि यह भारतीय परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल है।

ऋग्वेद मनु को मानवजाति का पिता बताता है। यथा :—

"यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ धियमत्नत।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतोर्चन्नतु स्वराज्यम्॥
(ऋ. १, ८०, १३)

मनु ही पहला मानव है और पहला यज्ञ-कर्ता है। मनुष्य-वाचक ये शब्द, मानव, मनुज, मनुष्य इत्यादि भी इसी सत्य को प्रमाणित करते हैं। ये सब शब्द मनु से ही बने हैं। मन धातु का अर्थ है सोचना, विचार करना। मानव ही एकमात्र मनन-शील प्राणी है अतः वह मनुष्य बताया गया है। मनु ने अपनी कन्या 'इडा' (शतपथ ब्राह्मण, विष्णु-पुराण) से सतागम किया और उसको अनेक सन्तानें हुई ! मनु मानव-समाज का पिता है। अनेक जगहों में उसकी कन्या का साम 'शतरूपा' दिया गया है। इस विषय में वैदिक ऋषि "वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च" की उक्ति है—

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥
(१०, ८६, २३)

मनु विवस्वान् का पुत्र है। प्राचीन संस्कृतियों के पुत्रोत्पत्ति विषयक मिलने वाली कथा मनु-कथा से मिलने वाली है, यम-यमी संवाद से नहीं।

वैदिक देवता प्राकृतिक शक्ति है यदि यह सत्य मान लिया जाए, तब यम-यमी संवाद के प्रति मति-विभ्रम दूर हो जाए। देवताओं के विषय में कहा गया है—

परोक्षप्रिया हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः।

वैदिक ऋषि वस्तु-सूचक वर्णन करते हैं। उस वर्णन में गुप्तता प्रयत्न पूर्वक रखी जाती है।

यम एक गुप्त है। चन्द्र को दिया गया यह गुप्त नाम है। यम विवस्वान् का पुत्र है। इस सत्य को यम ऋषि ने ही इस प्रकार कहा है—

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति॥
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व॥
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥

(१०, १४, १-५)

विवस्वान् सूर्य है और उसका पुत्र चन्द्र है। यम का पिता सूर्य हुआ और चन्द्र सूर्य का पुत्र है। अतः यम का अर्थ चन्द्र हुआ जो ऋषि ने संकेत से बताया है। यम और चन्द्र में सादृश्य देखने के बाद यह संशय नहीं रह सकता कि ऋषि का यम से चंद्र अभिप्रेत नहीं है। आकाश में प्रकाश फैलाते हुए चन्द्र का अस्तंगत होना हरेक व्यक्ति को दिखाई देता है। चन्द्र ही एक ऐसा देवता है जिसकी मृत्यु प्रत्येक को दिखाई देती है।

ठीक है यम देवता है, पर मृत्यु का देवता है। ऋषि इस वास्ते यम-यमी को मृत्यु-मार्ग कहता है। वह मृत्यु का बन्धु और यम का दूत भी बताया गया है। यम को यमदूत बता कर ऋषि ने यम की मृत्यु के साथ एकता व्यक्त कर दी है।

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः पंथा यमस्य गादुप॥

(१, ३८, ५)

अपरञ्च—

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्मा अधि येतिरे शुभे।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः॥

(ऋ. १, ६३, ४)

मृत्युरहित यम की स्तुति वैदिक ऋषि ने इस प्रकार की है—

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वे आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ।।
(१ ८३, ५)

चन्द्र की कलाओं का एक पक्ष में ह्रास होता है, और दूसरे पक्ष में उसका विकास होता है। स्पष्ट है चन्द्र=यम, कभी मरता नहीं।

यम (चन्द्र) की यज्ञ के वास्ते की गई आज्यहुति का वर्णन यथार्थ है। हर अमावास्या को देवों को लक्ष्य करके दर्शेष्ट यज्ञ किया जाता है। यज्ञ का यह रूपकात्मक वर्णन है। चन्द्र की मृत्यु इस बात का सूचक है कि देवों को उद्देश्य करके यज्ञ का प्रारम्भ किया गया। देवताओं में यम का मृत्यु स्वीकार करना बताना वैदिक ऋषि की उद्दाम कल्पना का सूचक है।

यम प्रथम यज्ञकर्ता है। पौर्णिमा और आमावास्या को होने वाले यज्ञ में यम सहायक होता है। अथर्ववेद इस बात को इस तरह कहता है: "यमे अध्वरो निविष्टः"।

यम-यमी सूक्त वैदिकऋषि की अत्युत्कट कवित्वशक्ति का प्रमाण है।

चन्द्र (यम) और रात्रि (यमी) : इस युगल का यम-यमी संवाद रूपकात्मक स्वरूप है। यम शब्द का जुड़वाँ या युगल अर्थ भाषाशास्त्रियों को मान्य हैं। चन्द्र (यम) रात्रि (यमी) का जुड़वा है। रात और चाँद दोनों एक साथ आते हैं और साथ ही रहते हैं। ऋषि रहस्य की रक्षा सप्रयत्न करते हैं। देवताओं के मध्य गूढ एकात्मकता को प्रकट नहीं होने देते। अतः चन्द्र और यम का पृथक्-पृथक् निर्देश किया गया है। परन्तु दोनों को एक जानने में कोई बाधा नहीं। यम का अनेक देवताओ के साथ वर्णित एकत्व इस वैचित्र्य को लाने के लिए ही है। ऋषि का कहना है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।
(१, १६४,४६)

देवताओं के नाम से अभिहित शक्तियाँ वस्तुतः परब्रह्म परमेश्वर की विभिन्न शक्तियाँ बताने के लिए है। अतः यम को मानवजाति का पिता माना वेद के एकेश्वरवाद को न स्वीकार करना है। भारतीय संस्कृति और भारतीय परम्परा एकेश्वरवादी है। इसको जब बहुदेवतावादी माना जाताहै और इस धारणा से विचार किया जाता है तब मति-विभ्रम होता है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

सब छन्द यम में रहते हैं, यह कथन भी ठीक है। ऋषि की यह वाणी मिथ्या नहीं हो सकती :—

त्रिकद्रुकेभिः पतति षलुर्वीरेकमिद् ब्रहत् ।
त्रिष्टुगायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ।।
(१०, १४, १६)

"छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता" इस ऋषिकथन में कुछ अस्वाभाविक बात नहीं है । छन्द शब्द वैदिक मन्त्रों के लिए यहाँ विवक्षित है । वेदपाठी ब्राह्मणों के विश्राम के समय रात में सब मन्त्र चन्द्र के अधीन हो जाते हैं । चन्द्र अपनी कलाओं द्वारा यज्ञ का नियमन करता है । अतः यम देवता के अधीन मन्त्रों का रखना उचित ही है ।

यम को पितरों का राजा अकारण नहीं कहा गया है । उपनिषदों में बताया गया है कि यम पितरों को रहने के वास्ते निवास-स्थान देता है । यम का निवास-स्थान आकाश में बहुत दूर अत्युच्च पर्वत पर नदी के परले पार है । स्वर्ग देवों का स्थान है । इसको 'देवमान' 'हर्म्य' "यमस्य सदनम्' से भी कहा गया है । उपनिषदों के अनुसार यह स्वर्ग और कही नहीं, चन्द्र में है ।

इस कल्पना का आधार यह है :—

चन्द्र देवों का सोमपात्र है । देव उसको बार-बार खाली करते हैं और उसको भरते हैं । चन्द्र का क्षय व वृद्धि का सम्बन्ध भी मृतात्मा के वहाँ जाने से और वहाँ से लौटने से सम्बन्धित है । चन्द्र का अर्थ स्वर्ग है और वही पुण्यशाली पितरों का निवास-स्थान है ।

पुनर्जन्म की कल्पना के अनुसार मानव-जन्म आत्मा का प्रथम जन्म नहीं । वह तो चन्द्र (स्वर्ग) से उसका वापिस आना है । स्वर्ग (चन्द्र) में रहते हुए आत्मा सुकृत पुण्यों का फल भोगता है ।

देवयान और पितृमान इन दोनों यानों के मध्य चन्द्र एक विश्रान्ति-स्थान है, एक अन्तर है । पितृयानमार्ग में चन्द्र प्राप्तव्य स्थान ही हैं । देवयान मार्ग में विश्रान्ति-स्थान हैं । पितृयान मार्ग से जाने वाले अपने संचित सुकृतों का पुण्य फल उसके समाप्त होने तक चन्द्रमा में रहकर भोगते हैं ।

उपनिषदों के अनुसार भी चन्द्र मृतात्माओं का निवास-स्थान है और यम पुण्यवान् पितरों का राजा है । क्या इसके बाद सन्देह का स्थान रह जाता है कि यम—चन्द्र नही है और यम की बहिन यमी रात्रि नहीं है । क्या अब भी कुछ ऊहापोह की गुञ्जाइश शेष रह जाती है ? ऋग्वेद भारतीय संस्कृति का स्रोत है । अतः उसकी व्याख्या क्या भारतीय परम्परा के अनुसार न करनी चाहिए ? भारतीय परम्परा का परित्याग करने से क्या भटकना नहीं पड़ता ?

★

महाराज राणा भवानीसिंह जी : संक्षिप्त जीवन और कृतित्व

[जन्म शताब्दी २ सितम्बर, १९७३]

माधव सिंह दीपक

भारतीय इतिहास में अनेक प्रतिभाशाली और लोकप्रिय शासक हुए हैं। एक ओर जहाँ वे कुशल राजनीतिज्ञ और सदाचारी थे वहाँ दूसरी ओर कवियों कलाकारों और विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। विक्रम और भोज की परम्परा में झालावाड़ नरेश महाराज भवानीसिंह जी का नाम चिरस्मरणीय रहेगा। उनके जीवन और कृतित्व से अवगत होने से पहले झालावाड़ की संक्षिप्त ऐतिहासिक जानकारी आवश्यक है। राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने कोटा के दिवान राजराणा जालिमसिंह जी का अपने ग्रंथ में विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने अपनी अद्‌भुत राजनीति के बल पर ऐसी व्यवस्था की कि या तो उनके वंशज पीढ़ी दर पीढ़ी दीवान के पद पर बने रहे या उन्हे अपने कोटे का आधा राज्य देकर अलग कर दिया जाए। उनके पौत्र महाराजराणा मदनसिंह जी ने अलग राज्य लेकर सन १८३८ में झालावाड़ राज्य की स्थापना की। किन्तु सन्धि की शर्तोंमें एक शर्त यह भी थी कि यदि जालिम सिंह जी का कोई वंशज न रहे तो वह राज्य पुनः कोटा राज्य में मिल जाएगा। दुर्भाग्य से सन १८९० में ऐसी स्थिति पैदा हुई।

झालावाड़ नरेश महाराज राणा जालिम सिंह जी द्वितीय को अंग्रेज सरकार ने विद्रोही और विक्षिप्त मानकर राज्य से निर्वासित कर दिया और उन्हें

अपना शेष जीवन बनारस में बिताना पड़ा। झालावाड़ का दो तिहाई हिस्सा कोटा राज्य में वासप चला गया परन्तु एक तिहाई भाग ऐसा था जो होल्कर राज्य की ओर से दिया गया था। इस भूभाग के लिए संघर्ष प्रारंभ हुआ महाराजा भवानीसिंहजी यद्यपि राजराणा जालिमसिंहजी के सीधे वंशज नहीं थे, तथापि वे उनके भाइयों के वंश में थे और इस प्रकार वे उस अवशिष्ट भूभाग के उत्तराधिकारी थे। संयोग से उस समय उनके नाना महाराजा बलभद्रसिंह जी थे जो माउंट आबू में अंग्रेज सरकार के अटेची थे। उन्होंने इस मामले की इंगलैंड तक लिखा पढ़ी की। तीन वर्ष के परिश्रम के बाद एक नया झालावाड़ राज्य स्थापित हुआ। पहला राज्य-संधि राज्य था और यह दूसरा सनद राज्य था तोपों की सलामी १२ से घट कर ११ रह गई। महाराज राणा भवानीसिंह जी का ६ फरवरी १८९९ को राज्य तिलक हुआ। कुछ वर्षो बाद तोपों की सलामी ११ से १३ कर दी गई थी।

इस प्रकार महाराज भवानी सिंह जी का जीवन संघर्ष से प्रारंभ हुआ। उनका जन्म २ सितम्बर १८७३ को झालावाड़ में हुआ। उनके पिता छत्रसाल राज्य के एक जागीरदार थे। कुंवर भवानीसिंह जी की शिक्षा-दीक्षा अजमेर में हुई। बाल्यकाल से ही मेधावी और अध्ययनशील थे। अंग्रेजी भाषा पर उन्हें विशेष अधिकार था किन्तु उनकी योग्यता का समुचित आदर न हुआ और महाराज राणा जालिमसिंह द्वितीय ने उन्हें पुलिस विभाग में एक छोटे पद पर नियुक्त किया जिससे वे असंतुष्ट रहने लगे। धीरे धीरे जालिमसिंह जी और अंग्रेज सरकार का मतभेद बढ़ता गया। उन्होंने अंग्रेजों से मिलना बन्द कर दिया और अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधियों से बात करने के लिए महाराजा बलभद्रसिंह जी को अपना एजेन्ट नियुक्त किया जो झालावाड़ केबीनेट के सदस्य भी थे। अंग्रेजी सरकार ने जालिमसिंह जी को सन १८८४ में शासन के अधिकार सौंपे परन्तु तीन ही वर्ष बाद वे अधिकार उनसे अप्रसन्न होकर छीन लिये। सन १८८६ से १८९६ तक का समय झालावाड़ में बडा संघर्ष पूर्ण था। एक ओर रियासत में राना का प्रभाव था तो दूसरी ओर अंग्रेज सरकार का प्रतिनिधि कर्नल एबट राज्य के प्रवंधक के रूप में मौजूद था। राज्य की बिगड़ती हुई स्थिति को देखकर महाराजा बलभद्र सिंह जी माउन्ट आबू चले गए और महाराज भवानीसिंह जी को एक पत्र के साथ

जोधपुर के दीवान कर्नल प्रताप सिंह जी के पास भेजा जो उनके मित्र थे। उन्होंने महाराज भवानीसिंह जी को जोधपुर के पुलिस विभाग में अधिक वेतन पर नियुक्त कर दिया।

जब जालिमसिंह जी द्वितीय को राज्य से निर्वासित किया गया तब झालावाड़ की जनता वहुत क्रुद्ध और असन्तुष्ट थी। उपद्रव और युद्ध की आशंका से अंग्रेज सरकार ने एक विशेष पलटन नीमच और झालावाड़ में बुलाली थी। झालावाड़ की सेना अपने राजा के आदेश की प्रतीक्षा में खड़ी थी किन्तु जालिमसिंह जी ने कहा कि मैं अपने लिए अपनी प्रजा को नष्ट नहीं होने दूँगा और वे सारी प्रजा को शान्ति बनाए रखने को कहकर बनारस चले गए।

एक ओर राजा गए, दूसरी ओर दो तिहाई राज्य चला गया तो तीसरी ओर अवशिष्ट भाग पर अंग्रेज शासन करने लगे। इससे जनता में असंन्तोष और भी फैला। महाराज भवानीसिंह जी की योग्यता और जनहित की भावना से जनता उस समय तक अपरिचित थी। फलतः आरम्भ के दिनों में उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा किन्तु थोड़े ही दिनों में वे जान गए कि एक वास्तव में जनहितैषी—शासक उनके बीच में उपस्थित था। उस स्थित में एक छोटे से राज्य की बागडोर संभाल कर महाराज भवानीसिंह जी इतने लोक प्रिय और दूर दूर तक प्रसिद्ध हुए कि इतना यश विरले ही लोगों को प्राप्त होता है।

सबसे पहले महाराज भवानी सिंह जी ने शिक्षा और चिकित्सा की ओर ध्यान दिया। झालावाड़ में दरबार हाई स्कूल की स्थापना सन् १९०२ में हुई। यह संस्था अब राजकीय महाविद्यालय बन गई है और हजारों छात्र वहाँ शिक्षा पा चुके हैं। झालावाड़ में सार्वजनिक अस्पताल खोला गया। छात्रों के लिए एक मिडिल स्कूल बनवाया गया जिसकी मध्य इमारत अब भी विद्यमान है और जो अब हाई स्कूल है। उस समय एक अंग्रेज महिला मिस मोरल इस स्कूल की प्रधान-अध्यापिका थीं। इसी प्रकार राज्य में अन्यत्र भी प्राथमिक और मिडिल स्कूल खोले गए। गरीब छात्रों को राज्य की ओर से वजीफे मिलते थे। एक छात्रावास भी बनाया गया। सन् १९२१, १९३१ और १९४१ की जनगणना रिपोर्टों के अनुसार झालावाड़ शिक्षा के

क्षेत्र में सारे राजस्थान में सब से आगे था। अच्छे छात्रों को महाराज अपने पास बुलाकर पुरस्कार आदि से प्रोत्साहित करते थे।

झालावाड़ में आधुनिक शिक्षा का श्रीगणेश महाराज भवानीसिंह जी ने किया। इस समय झालावाड़ जिले में लगभग ४८००० छात्र और २००० अध्यापक हैं। महाराज भवानीसिंह जी स्वयं शिक्षाविद्, कुशल लेखक, वक्ता और अच्छे विज्ञानवेत्ता थे। उन्होंने झालावाड़ में एक भव्य पुस्तकालय बनवाया जिसे भवानी परमानन्द पुस्तकालय कहते हैं। परमानन्द जी चतुर्वेदी उत्तर प्रदेश में कायमगंज के रहने वाले थे। वे भारत के श्रेष्ठ विद्वान थे। पुस्तकालय में एक प्रति परमानन्द जी ने, जो उस समय राज्य के दीवान थे, अपने पुस्तकालय के लिए रखी। उनका पुस्तकालय कायमगंज में विद्यमान है। झालावाड़ के भवानी परमानन्द पुस्तकालय से लगभग अठठारह हजार पुस्तकें लेकर नगर में एक और सार्वजनिक पुस्तकालय खोला गया जिसे पहले केम्ब्राल लाइब्रेरी कहते थे। और अब जिसे हरिश्चन्द्र पुस्तकालय कहते हैं। इसी प्रकार महाराज भवानीसिंह जी का अपनी कोठी पृथ्वी विलास पैलेस में भी पुस्तकालय था जो अब भी है। कोठी के सभी कमरों में पुस्तकें भरी थीं और महाराज डेढ़ दो घंटे रोज पुस्तकें पढ़कर अपना ज्ञानवर्धन करते थे।

महाराज भवनीसिंह जी ज्ञान विज्ञान के अनेक विषयों के ज्ञाता थे। एक ओर उन्होंने साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया तो दूसरी ओर वे विज्ञान का भी अध्ययन करते थे। उन्होंने रेबज एण्डइट्स ट्रीटमेंन्ट 'और 'कालेरा एण्ड इट्स ट्रीटमेन्ट' नामक दो रिसर्च पेपर पुस्तिकाओं के रूप में लिखे और प्रकाशित कराए। उनकी सबसे सुन्दर कृति "ट्रेवल पिक्चर्स" है जिसमें उनकी सन् १९०३—०४ की पहली यूरोप यात्रा का सचित्र और साहित्यिक वर्णन है। यह पुस्तक झालावाड़ के जेल प्रेस में छपी थी। यह प्रेस भी उन्होंने लगवाया था जिसमें झालावाड़ का राज-पत्र शासन की वार्षिक रिपोर्ट, विभिन्न अधिनियम और अन्य सरकारी सामग्री छपती थी।

महाराज भवानीसिंह जी दैनिक डायरी भी लिखते थे। उन्होंने अनेक बार विदेश—यात्रा की। सन् १९२५ में वे आस्ट्रेलिया सरकार के निमंत्रण पर आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड गए। वहाँ का फोटो एलबम और उनकी आस्ट्रेलिया डायरी अभी अप्रकाशित रखी है। उसके बाद वे पनामा नहर

पार करते हुए एटलाँटिक महासागर के मार्ग से इंगलैण्ड गए और वहाँ से भारत लौटे। उन्होंने पहली यूरोप-यात्रा १९०२-०३ में, दूसरी १९१२ में, तीसरी १९१८ में, चौथी १९२० में और पाँचवीं १९२५ में की थी। जब उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और हृदय रोग बढ़ने लगा तब १३ अप्रैल १९२९ को उन्होंने यूरोप के लिए अंतिम बार प्रस्थान किया किन्तु बम्बई से चले ५ घंटे ही हुए थे उनका देहान्त जहाज में हो गया। उनका शव बर्फ में रख दिया गया और पाँचवे दिन जब जहाज अदन बन्दरगाह पहुंचा तब वहाँ उनका दाहसंस्कार किया गया। इस प्रकार एक महान यात्री मरते समय भी यात्रा कर रहा था। यहाँ तक कि मृत्यु के बाद भी उन्होंने पाँच दिन तक यात्रा की।

महाराज भवानीसिंह जी की खेल कूद, आमोद-प्रमोद और ललित कलाओं से भी रुचि थी। उन्होंने झालावाड़ में एक बढ़िया क्रिकेट मैदान तैयार कराया और क्रिकेट की एक अच्छी टीम तैयार की। इस टीम में, रतीलाल, एस. एम. जोशी, ठाकुर किशनसिंह, प्यारे खाँ, जी. आर. बण्डा आदि अच्छे खिलाड़ी थे। महाराज ने ५००० रु० प्रदान करके राजपूताना क्रिकेट टूर्नामेंट के लिए एक चाँदी की शील्ड दी थी जो आज भी काल्विन शील्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यह शील्ड पहली बार झालावाड़ टीम ने जीती थी।

महाराज भवानीसिंह जी का रंग मंच क्षेत्र में बड़ा योगदान है। झालावाड़ में ४४ वर्ष तक रंगमंच रहा जिसमें सैंकड़ों नाटक खेले गए। नाट्यशाला के प्रबन्ध के लिए मुंशी अजीजुर्रहमान नियुक्त थे जो इस समय ८८ वर्ष के वृद्ध हैं। उन्होंने खेले गए नाटकों की सूची भी बनाई थी। कभी शेक्सपियर के नाटक अंग्रेजी में भी खेले जाते थे। महाराज इंगलैण्ड से अपने साथ एक प्रसिद्ध शेक्सपियर – ऐक्टर चार्ल्स डोरन झालावाड़ ले आए थे। उन्होने विदेशों में घूमकर एक सुन्दर नाट्यशाला का डिजाइन तैयार कराया और १९२१ में भवानी नाट्यशाला की तीन मंजिली सुन्दर इमारत तैयार कराई जिसमें पहले महाकवि कालिदास का शकुन्तला नाटक खेला गया। नाट्यशाला में वेतन के आधार पर अभिनेता, गायक और नर्तक मौजूद थे। महाराज ने एक फर्शी बैण्ड भी तैयार कराया था जिसमें आधुनिक आर्केस्ट्रा की भाँति

वाद्यों का वादन किया जाता था और इस के साथ गायन भी होता था। झालावाड़ में अब भी एक राजकीय संगीत स्थल है।

झालावाड़ के साँस्कृतिक क्षेत्र में पंडित श्याम शंकर जी का नाम आए बिना नहीं रह सकता। वे महाराज के प्राइवेट सैक्रेटरी थे और अंग्रेजी के विद्वान थे। उन्होंने आक्सफोर्ड से पी-एच. डी. की डिग्री ली। उन्होंने "बुद्ध एण्ड हिज, प्रींचिग्ज" पुस्तक लिखी। वे अच्छे गायक और नर्तक थे। उनके बड़े पुत्र उदय शंकर ने विश्व के महान नर्तक के रूप में ख्याति प्राप्त की है और छोटे पुत्र रविशंकर ने सितार वादन में।

महाराज भवानीसिंह जी ने भी अपना नाम आक्सफार्ड यूनिवर्सिटी में रिसर्च स्कालर के रूप में दर्ज कराया था और उनका विद्याप्रेम इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि वे वृद्धावस्था में भी थीसिस लिख रहे थे किन्तु स्वास्थ्य बिगड़ जाने से उनका यह स्वप्न पूरा न हो सका।

महाराजा ने झालावाड़ में अनेक साहित्यिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। उन्होंने शेक्सपियर सोसाइटी बनाई जिसका वे वार्षिक अधिवेशन भी करते थे। 'संडे लेक्चर्स' कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रति रविवार को साहित्यिक और वैज्ञानिक विषयों पर भाषण दिये जाते थे। कविगण अपनी कविताए सुनाते थे। उन के राज्यकाल में हजारों कविताएँ बनीं। कवि सम्मेलन में उस युग की परिपाटी के अनुसार समस्या पूर्तियाँ सुनाई जाती थीं जिनका रिकार्ड महाराज जसवन्तसिंह जी 'जस' द्वारा रखा जाता था। कवियों और विद्वानों में थे राजगुरू पडित गिरधरशर्मा नवरत्न, राव भैरवसिंह, बाबा शेरदान, बाबा फतहकरण चारण, राजहंस, केशरकुमारी देवी, बजरंग भंडारी भट्ट, गिरधारी लाल तेलंग, गोपाल जी व्यास, कुलमणि शास्त्री, जयदेव झा, कन्हैयालाल शास्त्री, पंडित धनीराम गौड, पंडित परमानन्द चतुर्वेदी, भाया शादीलाल जी, मास्टर रामचन्द्र जी, अम्बिकाचरण जी, अमर नाथ जी गंभीर, पंडित रामनिवास जी, पंडित श्रवणलाल जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन पंक्तियों के लेखक के पितामह महाराज बलभद्रसिंह जी और पिता महाराज भीमसिंह जी भी अच्छे कवि थे। बलभद्रसिंह जी की कविताएं बलभद्र—प्रकाश ग्रंथ में प्रकाशित है। भीमसिंह जी कृत भीम-सतसई अभी अप्रकाशित है यद्यपि उनकी जीवनी भीम-चरित्र छप चुकी है। बाबा शेरादान

कृत 'भटवाड़े का युद्ध' भी छपा है। पंडित गिरधरशर्मा नवरत्न ने हिन्दी और संस्कृत में अनेक पुस्तकें लिखीं। उन्होंने उमर खय्याम की रूबाईयां और टैगोर की गीतांजलि का संस्कृत में अनुवाद किया। संस्कृत में उनकी गिरधर सप्तशती प्रकाशित हो चुकी है।

महाराजराणा भवानी सिंह जीं के पुत्र महाराज राणा राजेन्द्र सिंह जी 'सुधाकर' प्रतिभाशाली कवि थे। उनका जन्म सन् १९०० ई० में हुआ और उनका विवाह सन १९२० में कोटड़ा सांगणी (सौराष्ट्र) की राजकुमारी हीराकुंअर वा से हुआ। सुधाकर जी कृत ' सुधाकर काव्यकला'' शंकर-शतक और ''मधुबाला-मधुशाला' प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके राजकवि हरनाथ जी ब्रजभाषा के बहुत अच्छे कवि थे। महाराज राजेन्द्रसिंह जी के पुत्र महाराज हरिश्चन्द्र जी का जन्म १९२१ में हुआ जो आगे चल कर राजस्थान के लोकप्रिय मंत्री बने।

महाराजा भवानी सिंह जी के समय में उर्दू शायर भी अनेक हुए जिन में मौलवी नैरंग, आगा, शम्भूदयाल दानिश, भामा शादीलाल जी, मुन्शी सिकंदर खाँ, जसर, मुन्शी उमरिहाज, मुन्शी मुस्तफी हुसैन, मुन्शी अजीजु-र्रहमान, मुन्शी जहरुद्दीन, मिर्जा रफीक बेग, तस्लीम और उनके पुत्र मिर्जा अबदुल सलाम देग, शफीक के नाम उल्लेखनीय हैं। महाराज राजेन्द्र सिंह जी मखमूर के नाम से उर्दू में कविता लिखते थे। उनका 'दीवाने मखमूर' अप्रकाशित है। मुन्शी अजीजुर्रहमान कृत उनकी उर्दू जीवनी 'सवानह उम्री' भी अप्रकाशित है। शफीक कृत 'दीवानी शफीक' भी नहीं छपा है। मौलवी नैरंग का 'दीवाने नैरंग' छप चुका है।

महाराज भवानी सिंह जी ने चित्रकला के विकास की ओर भी ध्यान दिया और उनके राज्य-काल में झालावाड चित्र शैली अपने चरम उत्कर्ष पर थी। आरम्भ में इस शैली पर कोटा बूंदी चित्र शैली का अधिक प्रभाव था। बाद में महाराज ने जब नाथद्वारे से घासी लाल जी, ओंकार लाल जी और प्रेमचन्द जी जैसे सिद्ध हस्त चित्रकार झालावात में बुला लिए तब मेवाड़ शैली का भी काफी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार झालावाड़ शैली में मेवाड़ शैली और बूंदी शैली का अद्‌भुत मिश्रण है। उपर्युक्त चित्रकारों द्वारा बनाए दर्शनीय चित्र पृथ्वीविलास पैलेस और बीरेन्द्र भवन में

लगे हुये हैं। इसी प्रकार झालावाड़ के गढ़ में स्थित कंवरपदी की खास होली के चौक आदि स्थानों पर बने भिति चित्र भी सुन्दर हैं। झालावाड़ की नाट्य शाला के पर्दों पर बहुत सुन्दर प्राकृतिक चित्र बनाये गए थे। उस युग में प्रत्येक पर्दे की लागत ५००० रु० आई थी।

महाराज भवानीसिंह जी ने इतिहास और पुरातत्व की ओर भी काफी ध्यान किया। उन्होंने झालावाड़ में पुरातत्व संग्रहालय की स्थापना की जिसमें महत्वपूर्ण प्राचीन शिला लेख, अनेक भव्य मूर्तियाँ और सुन्दर चित्र है। उसमें २००० प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भी हैं। उसमें झालावाड़ के कारीगरों द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुएं भी हैं।

महाराज ने झालावाड़ का इतिहास तैयार करने के लिए जोधपुर से एक चारण कवि मुरारीदान जी को अपने यहां बुलाया। इस सम्बन्ध में उनकी सहायता के लिए बहुमूल्य ऐतिहासिक पुस्तकें भी उन्हें दी गई। बाद में मुरारीदान जी काश्मीर के राज कवि के रूप में काश्मीर नरेश महाराज प्रतापसिंह जी के पास भेज दिए गये। वे अपने साथ सब सामग्री भी ले गए थे। इस प्रकार यह कार्य सम्पन्न न हो सका। एक बार महाराज भवानीसिंह जी जब इन्गलैंड में थे तब उन्हें एक रिसर्च स्कालर मिला जो राज राणा जालिम सिंह जी प्रथम पर थीसिस लिख रहा था। उसने उन्हें सुझाव दिया कि कर्नल जैम्स टॉड कृत 'राजस्थान' का द्वितीय संस्करण छपवाने में सहायता करें।

महाराज ने यह सुझाव सहर्ष स्वीकार किया। 'राजस्थान' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। यह संस्करण महाराज भवानीसिंह जी को समर्पित किया गया। इस प्रकार उनकी राजोचित उदारता से अनेक ग्रन्थ छपे जो उन्हें समर्पित किये गए।

महाराज भवानीसिंह जी अपने युग के बहुत बड़े समाज सुधारक थे। उस समय स्वामी दयानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द आदि सुधारक संतों का काफी प्रभाव था। सांस्कृतिक जागरण की उस वेला में अनेक विद्वान झालावाड़ जाते थे और वहां उनके कार्यक्रम होते थे। सनातनी, आर्यसमाजी, थियासोफिस्ट और वेदान्तशास्त्री वहां पर जाते रहते थे। और उनके शास्त्रार्थ होते रहते थे। झालावाड़ के कुशल वक्ताओं में

महाराज भवानीसिंह जी, महाराजा बलभद्रसिंह जी, पंडित श्रवणलाल जी पंडित रामनिवास जी और पंडित गिरधरशर्मा नवरत्न के नाम उल्लेखनीय हैं।

झालावाड़ में उस युग में ही आर्य समाज की स्थापना हुई जिसे राज्य की ओर से आर्थिक सहायता दी जाती थी। महाराज ने सुधार सम्बन्धी अनेक कानून बनाये। विधवा विवाह की अनुमति दी गयी। बाल विवाह पर प्रतिबंध लगाया गया। लड़के बीड़ी सिगरेट न पियें इसका भी कानून बनाया गया। ये सब कानून हिन्दी में बनाए जाते थे।

महाराज भवानीसिंह जी ने सन् १९०९ में ही हिन्दी को झालावाड़ की राजभाषा बना दिया था। अदालतों में भी उर्दू मिश्रित हिन्दी का प्रयोग होता था। लिपि देवनागरी थी। महाराज ने हिन्दी का एक वृहत् शब्दकोश बनाए जाने का भी आदेश दिया था। परन्तु यह कार्य सम्पन्न न हो सका।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के सिलसिले में पंडित मदन मोहन मालवीय झालावाड़ भी आए थे और उन्हें समुचित दान दिया गया था। सन् १९१६ में विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में भाग लेने के लिए महाराज भवानीसिंह जी और महाराजा बलभद्रसिंह जी बनारस गये। वहाँ उनकी गाँधी जी से भेंट हुई और वे उनके भाषण से प्रभावित हुए। उसके बाद सन १९१८ में इन्दौर में जब काँग्रेस का अधिवेशन हुआ तब झालावाड़ के प्रतिनिधि के रूप में महाराजा बलभद्रसिंह जी ने उसमें भाग लिया। वे स्वागत समिति के सदस्य भी थे। उनका गाँधी जी के साथ लिया गया चित्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद में मौजूद है। इसी अधिवेशन में हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा घोषित की गई। खिलाफत आन्दोलन के समय महाराजा बलभद्रसिंह जी बम्बई में मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली से से मिलने गए। उस समय झालावाड़ के कैप्टेन अब्दुल रजाक खाँ भी उनके साथ गए थे।

उन दिनों में झालावाड़ राष्ट्रीय आन्दोलन का एक केन्द्र था। राज्य की ओर से राष्ट्रीय भावना को पूरा प्रोत्साहन दिया जाता था। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी केसरी सिंह जी बारहठ और विजयसिंह जी 'पथिक' झालावाड़ जाते रहते थे। एक बार महाराजा बलभद्रसिंह जी ने बारहठ जी को फाँसी से बचवाया था। वे उस समय झालावाड़ केबिनेट के चेयरमैन थे और उन्होंने अपने प्रभाव से यह कार्य किया था जिसकी प्रशंसा में बाबा फतहकरण जी ने

एक छन्द लिखा था जिसकी अंतिम पंक्ति इस प्रकार थी:—"जागतो न तू तो काल इन्दुर कुतर खातो, केसर बचातो कौन तेरे बिन केसरी।"

महाराज भवानीसिंह जी १६०२-०३ के दिल्ली दरबार में उपस्थित थे। बाद में उन्होंने लार्ड कर्ज़न से भेंट की। सन् १६०७ में उन्हें के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। उस समय भारत की राजधानी कलकत्ता थी। वहाँ जाकर वे लार्ड हार्डिन्ज से मिले।

भारत की पहली औद्योगिक प्रदर्शनी सन् १६१० में इलाहाबाद में हुई। उसे देखने राजे महाराजे भी गए और देश के नेतागण भी गए। उन्हीं दिनों इलाहाबाद में काँग्रेस अधिवेशन भी हुआ जिसमें देश के बड़े-बड़े नेताओं ने भाग लिया। महाराज भवानीसिंह जी चैम्बर आफ प्रिंसेज़ के भी सक्रिय सदस्य थे और उसकी सभाओं में भाषण देते थे। एक बार इंगलैण्ड में हाउस आफ लार्डज के सदस्यों को उन्होंने डिनर दिया था। उस युग में राजे महाराजे भारत के साँस्कृतिक और राजनीतिक दूत की भाँति होते थे। इंगलैण्ड में उनका स्वदेश प्रेम और भी मुखरित होता था। महाराज भवानीसिंह जी इंगलैण्ड में ऐसे लोगों से मिले जो संस्कृत के विद्वान थे किन्तु जिनका संस्कृत उच्चारण ठीक नहीं था। उन्होंने स्वयं संस्कृत सीखी और उन विद्वानों से शास्त्रार्थ कराने के लिए झालावाड़ से पंडित कुलमणि शास्त्री को अपने पास इंगलैण्ड बुलाया। पंडित कुलमणि शास्त्री धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे जिन्हें सुनकर अंग्रेज विद्वान चकित रह गए।

महाराज भवानीसिंह जी को मनुष्य की बड़ी अच्छी पहचान थी अर्थात् किस व्यक्ति से किस प्रकार का काम लिया जाए इसे वे अच्छी तरह जानते थे और यही उनके सफल शासक होने का रहस्य था। उनके राज्यकाल में अच्छे अधिकारी और अहलकार मौजूद थे जिनको झालावाड़ की जनता अब तक नहीं भूली है। उनमें ठाकुर उमरावसिंह जी, महाराजा बलभद्रसिंह जी, दीवान परमानन्द जी, भाया शादीलालजी, बाबू शिवनाथसिंह जी और उनके पुत्र कंवर रामसिंह जी, बाबू मिट्ठन लाल जी, मास्टर श्याम शंकर जी, डा० शिरोमणि हाजरा, डा० रामलाल, डाक्टर परमानन्द भाटिया, बाबू श्याम बिहारी लाल माथुर, मीर मुंशी कृष्णकुमार जी माथुर, बाबू छेदालाल जी माथुर, मुन्शी कालीचरन जी, मियां अब्दुल गफूरखा और उनके पुत्र अब्दुल रज़ाक खां, बोहरा गोबिन्दलाल जी, धाभाई नाथूलाल जी, सेठ कुशलराज जी, मोजुद्दीन

जी, बख्शी शेख सुभान जी, काका सोभागसिंह जी, भाया सोभागमल जी सुराना, महाराजा भीमसिंह जी, नारायणसिंह जी माथुर, कैप्टन तख्त सिंह जी, मेजर मानसिंह जी, लेफ्टिनेन्ट बहादुरसिंह जी, बाबू अमरनाथ जी गंभीर, बाबू जगमोहनलाल जी भटनागर, मास्टर धनीराम जी, पं० हरिहर राम जी, मास्टर संतराम जी, मास्टर दिनकर राव जी, मास्टर रामचन्द्र जी, मास्टर हीरालाल जी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश अधिकारीगण महाराज राजेन्द्रसिंह जी और महाराज हरिश्चन्द्र जी के राज्यकाल में भी राज्य की सेवा करते रहे और कुछ लोग अभी जीवित हैं जो महाराज भवानी सिंह जी के शासन के उस स्वर्णिम युग की मधुर स्मृतियाँ संजोए हुए हैं।

महाराज भवानीसिंह जी की कोठी पर चार मन आटे की रोटियाँ प्रति दिन बनती थीं इससे अनुमान लग सकता है कि कितने व्यक्ति उनके यहाँ भोजन करते थे। देशी और अंग्रेजी खाना पकाने के लिए उनके यहां बढ़िया बावर्ची मौजूद थे। उनका जीवन इतना व्यस्त था कि सवेरे पाँच बजे से लेकर रात के बारह बजे तक वे काम करते रहते थे और समय के इतने पाबन्द थे कि लोग उनके निश्चित कार्यक्रम के अनुसार अपनी घड़ियाँ मिलाते थे। वे अपने सभी लोगों द्वारा समय का पालन किए जाने का अनुरोध करते थे और उसमें जग चूक होने पर बहुत नाराज़ होते थे।

उनका विवाह राजा बनने से पूर्व हो चुका था। उनकी रानी ब्रज कंवर कोटे के खेड़ली ठिकाने की हाडा वंश की कन्या थी जो उनकी ही भाँति बहुत उदार स्वभाव की थीं। हाड़ी जी साहिबा का देहान्त झालावाड़ में सन् १९१८ में हुआ। उस समय महाराज की अवस्था ४५ वर्ष की थी और कुछ लोगों ने उनसे दूसरा विवाह करने को कहा और यह भी कहा कि रावला (अंतःपुर) सूना हो गया है। उन्होंने दूसरा विवाह करने से इनकार कर दिया और कहा कि जब मेरे पुत्र का विवाह होगा तब रावला फिर बस जाएगा।

महाराजा भवानीसिंहजी के संपूर्ण जीवन और कृतित्व को देखकर कोई भी व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि जिस राज्य की वार्षिक आय केवल पाँच लाख रुपए थी उस के शासक के रूप में इतने प्रशंसनीय कार्य करना वास्तव में उनकी योग्यता और कार्य कुशलता का प्रमाण है। एक बार उनके राज्यकाल में जनहितकारी कार्यों पर किए गए कुल व्यय का हिसाब लगाया गया तो पता चला कि उन्होंने ५२ लाख रुपए की राशि सार्वजनिक

हित में लगाई थी। इसमें शासन के कर्मचारियों के वार्षिक वेतन शामिल नहीं थे।

इस राजोचित उदारता का परिणाम यह निकला कि राज्य ऋणग्रस्त हो गया। महाराजने कर्नल बेन नामक एक अंग्रेज को झालावाड़ में शासन का प्रबंधक नियुक्त किया। उस समय महाराजा बलभद्रसिंह जी जो कैबिनेट के चेयरमैन थे, सन १९२२में रिटायर हो चुके थे। सन १९२४ में उनका देहान्त हो गया। नए मंत्रियों में भाया शादीलाल जी और शिवनाथसिंह जी का सहयोग कर्नल बेन को प्राप्त हुआ। अन्त में केबीनेट ने यह फैसला किया कि राजकोष के बहुमूल्य आभूषण, रत्नादि बेचकर राज्य को ऋण से मुक्त किया जाए। इससे कर्ज़ जरूर चुक गया परन्तु राजकोष से लाखों रुपए के बहुमूल्य आभूषण नीलाम हो गए।

कुछ तो वृद्धावस्था के कारण और कुछ इस घटना के कारण महाराज को गहरा आघात पहुंचा और उन्हें दिल का दौरा पड़ा। कुछ दिनों के लिए वे अपनी स्मृति खो बैठे थे। यहा तक कि वे अपना नाम भी भूल बैठे थे। धीरे धीरे उनकी स्मृति लौट आई। महाराज अत्यन्त संवेदनशील और भावुक हो गए थे। यह भी विधि कीं विचित्र विडम्बना है कि जिस व्यक्ति ने झालावाड़ राज्य की पुन: स्थापना की और अपना सारा जीवन उसके हित में समर्पित कर दिया उसी देव पुरुष का बुढ़ापा कष्ट से कटा। उन्होंने झालावाड़ के लिये इतना कार्य किया किन्तु झालावाड़ ने उनके लिये लगभग कुछ नहीं किया। यही स्थिति गांधीजी की हुई थी। उन्हें तो बल्कि अपने सीने पर तीन गोलियाँ सहनी पड़ी थीं। हजारों वर्षों के परिश्रम और त्याग-तपस्या के बल पर महापुरुषों ने आदमी को इन्सान बनाने का भरसक प्रयत्न किया है किन्तु मानवता का समुचित विकास अब तक नहीं हो पाया है। लोग अपने देश की विभूतियों को भूल गए हैं। जैसे पथ पर प्रकाश स्तम्भ हटा देने से पाथक अपना सही मार्ग नहीं खोज पाता इसी प्रकार ऐसे विशेष पुरुषों को भुला देने पर मनुष्य रोटी, कपड़ा और रुपया कमाने की मशीन बनकर रह जाता है। वह जीवन के अच्छे विकास की और ध्यान नहीं दे पाता। भर्तृहरि के शब्दों में साहित्य संगीत कला विहीन मनुष्य में और बिना सींग पूँछ के जानवर में केवल यही अन्तर हैं कि वह पशुओं के भाग्य से घास नहीं खाता।

महाराज भवानीसिंह जी इतने विद्वान थे कि ज्ञान-विज्ञान के किसी भी विषय में वे वाद-विवाद में भाग ले सकते थे और अपने विचार प्रकट कर

सकते थे। उनका दावा था जिस जगह भवानीसिंह और बलभद्रसिंह मौजूद हों वहां कोई विद्वान इन दोंनो के बीच मे से जीत कर नहीं जा सकता था। यह केवल थोथा दावा नहीं था बल्कि सैंकड़ों विद्वानों से मिलने के बाद वे ऐसा कहा करते थे। जिस विषय की जानकारी उन्हें कम होती थी उसमें भी अपनी सूझ बूझ से वे ऐसे प्रश्न करते थे कि उनकी बात का जवाब नहीं बन पड़ता था। यह उनके सभाचातुर्य की विशेषता थी।

उनकी विद्वत्ता और योग्यता के आगे उनके अनेक सभासद और शासन के अधिकारी बच्चों की तरह थे जिन्हें वे सच्चे शिक्षक के रूप में काम करना सिखाते रहते थे। राजकाज और अध्ययन के अतिरिक्त वे दूर-दूर के देशी विदेशी लोगों के साथ निरन्तर पत्र व्यवहार करते रहते थे। प्रतिदिन रात के भोजन के बाद वे अपनी कोठी के उद्यान में नहर के किनारे डेढ़ दो घन्टे तक टहलते थे। उस समय बहुत से लोग उनके साथ रहते थे जिन से वे विभिन्न बौद्धिक विषयों पर चर्चा करते थे जैसे प्रसिद्ध यूनानी विद्वान प्लेटो अपने शिष्यों को साथ लेकर बाग में घूमता रहता था।

महाराज के सभी निकटवर्ती लोगों की यह कोशिश होती थी कि वे उन्हें प्रसन्न रखें। डाक्टरों की राय भी यही थी कि हृदय रोगी को किसी प्रकार का सदमा नहीं पहुंचना चाहिए। फिर भी महाराज की संवेदनशीलता बहुत बढ़ गई थी और कई बार लोगों को समझाते समझाते उनकी आँख भर आती थी। उदाहरण के लिए एक दिन डिनर के समय भाया शादीलाल जी देर से हाजिर हुए। महाराज ने कहना प्रारम्भ किया—"आजकल सर्दी का मौसम है। इस समय रात में कोई रजाई में लिपटा रहता है तो कोई अपनी पत्नी के बनाए हुए स्वादिष्ट भोजन का आनन्द लेता है। फिर यह कोठी शहर से कुछ दूर है और मैं अकेला हूं। जैसा खाना मेरे आदमी बना देते हैं वैसा ही मैं आपको खिलाता हूं। लेकिन आपका दाना पानी मेरे साथ लिखा है फिर मैं कैसे कह दूं कि आप मेरे साथ खाना मत खाया करो" कहते कहते उनकी आँखों में आँसू भर आए। इस पर भाया साहेब ने देर से आने की क्षमा माँगी और इसके बाद वे कभी देर से नहीं पहुंचे।

महाराज भवानीसिंह जी गुण और ज्ञान के ऐसे ग्राहक थे कि जब कभी उन्हें कोई नई जानकारी मिलती तो वे बहुत प्रसन्न होते थे या कोई अच्छी कविता सुनने को मिलती तो वे उसे अनेक बार सुनते थे। एक बार अलवर

नरेश झालावाड़ आए। एक ओर जहाँ वे प्रतिभाशाली राजा थे वहाँ दूसरी ओर वे वाममार्गी भी थे। महाराजा भवानीसिंह जी ने उन्हें अच्छे मार्ग पर चलने के लिए बहुत समझाया किन्तु सवाई जयसिंह जी पर कोई प्रभाव न पड़ा। जब वे चले गए तो इसका वर्णन रात को टहलने समय महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी अम्बिकाचरण जी उनके आगे कर रहे थे और महाराज की प्रशंसा के उन्हौंने पुल बाँध रखे थे। यह सुनकर महाराजा भीमसिंह जी, जो बड़े स्पष्टवादी थे, यह कह उठे कि अम्बिक महाशय, आप कुछ भी कहें मेरी राय में तो अलवर नरेश को उपदेश देकर महाराज ने बड़ी गलती की। यह सुनकर महाराज की भाव भंगिमा एकदम बदल गई। उनका चेहरा लाल हो गया और वे टहलने के लिये आगे बढ़े। लोग यह जान रहे थे कि महाराज अभी ऐसे बरसेंगे कि भीमसिंह जी उम्र भर याद रखेंगे। अम्बिक महाशय उन्हें देख कर अपना माथा ठोक रहे थे कि बीच में यह क्या पत्थर लुढ़का दिया।

अब यहाँ महाराज की विवेकशीलता और गुणग्राहकता का उदाहरण मिलता है। उस क्रोध की स्थिति में भी उनके मन में यह बात आई कि हो सकता है भीमसिंह जी के ध्यान में कोई ऐसी बात हो जो इस समय मेरे ध्यान में नहीं आ रही है। वे एक पेड़ के नीचे ठहर गए। सभासद मुँह लटकाए खड़े हो गए कि बस अब नाराजी का दौर शुरू होने वाला है। इतने में महाराज ने पूछा—"हाँ भीमसिंह जी। अब बताइये कि हमने कैसे गलती की।"

वे भी उत्तर के लिये तैयार खड़े थे। कहने लगे कि महाराज जेठवा कवि का एक सोरठा है कि—

सुण पूंगी सुर जीव,फण कर पाछो नँह फिरयो।
जल रो डींडू जीव, जहर कठा सूँ जेठवा॥

अर्थात् बीन के स्वरों को सुनकर जो साँप फन उठा कर सामने नहीं आया तो इससे स्पष्ट था कि वह जल का डेंडुवा था। उस पर बीन का क्या असर होता। इसलिये यह तो बीन बजाने वाले की गलती थी कि उसने उसके आगे बीन बजाकर व्यर्थ क्यों परिश्रम किया।

यह छन्द सुनते ही उनका क्रोध दूर हो गया और आंसू भर आए। उन्होंने कहा कि वाकई मैंने बड़ी गलती की। फिर उन्होंने कई बार वह छन्द सुना और दूसरों को सुनवाया। उनमें ऐसी गुणग्राहकता थी।

एक बार मास्टर रामचन्द्र जी ने 'रेडियो-एक्टिविटी' (विकिरण) पर भाषण दिया। उस भाषण से वे इतने प्रभावित हुए कि रात भर उस विषय पर चिन्तन करते रहे। इससे स्पष्ट है कि उनमें एक वैज्ञानिक की सी विचारशीलता थी। प्रयोगशालाओं में जाकर वे स्वयं विभिन्न प्रयोग देखते थे। उन्हें चिकित्सा, रसायन और भौतिकी में अधिक रुचि थी। ऐसी अद्भुत जिज्ञासा सामान्य प्राणी में नहीं होती। इसीलिए वह अधिक नहीं सीख पाता है।

सन १९२९ में महाराज भवानीसिंह जी का हृदय रोग जब बढ़ने लगा तब वे शैया पर लेटे रहने को मजबूर हुए। डाक्टरों की राय थी कि वे बातचीत बिल्कुल न करें और पूरी तरह आराम करें। फिर भी महाराज का आदेश था कि उनसे जो भी मिलने आए उसकी उन्हें सूचना दी जाए। कई लोग चुपचाप उन्हें प्रणाम करके चले जाते थे। उन्हें देख-देख कर चुप रहना महाराज के लिए भी कष्टप्रद था। जिन से वे उम्र भर हंसकर बोलते थे उनके आगे चुप कैसे रहते। लोगों के आँसू उनसे देखे नहीं जाते थे और डाक्टरों की सलाह न मानकर वे बोलने लगते थे।

धीरे-धीरे रोग और बढ़ा। उस समय भारत में हृदय रोग के विशेषज्ञ बहुत ही कम थे। महाराज ने निश्चय किया कि वे इगलैंड जाकर अपना इलाज करायेंगे। बम्बई पहुंचते-पहुंचते उनकी स्थिति और बिगड़ गई। अपने पुत्र महाराज राजेन्द्रसिंह जी से वे वहां अंतिम बार मिले। महाराज को लग रहा था कि वे नहीं बचेंगे फिर भी अपने स्वजनों के आगे वे देह छोड़ना नहीं चाहते थे। लोगों से यह दृश्य देखा न गया। वे जिद करते रहे कि मुझे जहाज पर ले जाओ। उन्हे जहाज पर ले जाया गया। जहाज पाँच घण्टे ही चल पाया था कि महाराज ने शरीर त्याग दिया। वह जहाज भी ऐसा था जो अपनी पहली यात्रा के लिए समुद्र में उतारा गया था। अतः जहाजी परम्परा के अनुसार उसे लौटाया नहीं जा सकता था। पाँचवें दिन अदन बन्दरगाह में उनका अन्तिम संस्कार किया गया।

महाराज भवानीसिंह जी की प्रशंसा में अनेक कवियों ने सैकड़ों छन्द लिखे जिनका संकलन किए जाने पर साहित्य की एक सुन्दर पुस्तक बन सकती है। उनकी दानवीरता के लिए कहा गया था, "रुके मेघमाला, पै न रुके हाथ झाला के।" उनकी सवारी का वर्णन करते हुए बाबा शेरादान ने लिखा है—

'चमकत कुंत कैधों चपला चलाव कैधों,
बाजत है बम्ब कैधों मेघ घहरान है।
थान–थान आज तजि देखे सुजान महा,
भूपति भवान कैधों आन मघवान है।।"

एक बार महाराज भवानीसिंह जी ने अपने प्यारे कुत्ते की मृत्यु होने पर उसकी समाधि के रूप में छतरी बनवाई थी। विधि की कैसी विडम्बना है कि कुत्ते की समाधि तो मौजूद है पर उसके मालिक की कोई समाधि नहीं है।

कुत्ते की समाधि बनाए जाने पर महाराज की प्रशंसा में बलभद्रसिंह जी ने एक छन्द लिखा था जिसकी अंतिम पंक्तियां इस प्रकार थीं—

ऐसो गुणज्ञानी तू भूपति भवानीसिंह,
श्वान हू बनावे तो बनावे द्वार तेरे को ।।

महाराज भवानीसिंह के बाद महाराज राजेन्द्रसिंह भी योग्य शासक सिद्ध हुए। उन्होंने अपने पिता द्वारा लगाये गए साहित्य और संस्कृति के पौधों की हिफाजत की। वे स्वयं कवि थे। अतः समूचे झालावाड़ राज्य में साहित्य के प्रति अनुराग था। उन्होंने अपने पिता की स्टेचू (प्रतिमा) इंगलैंड में बनवाकर झालावाड़ में प्रतिष्ठित की। उनका हृदय गति रुक जाने से सन १९४३ में देहान्त हो गया। सन १९४३ से १९४८ तक उनके पुत्र महाराज हरिश्चन्द्रजी ने राज्य किया। उनमें भी अपने पिता और पितामह की प्रतिभा थी।

सन १९४८ में जब राजस्थान संघ बना तब महाराज हरिश्चन्द्र जी ने राजकोष का १७ लाख रुपया और लाखों रुपये की इमारतें सरकार को दीं। आगे चलकर उन्होंने झालावाड़ का गढ़ और उसमें स्थित राजमहल तथा भवानी नाट्यशाला भी सरकार को दे दी। महाराज राजेन्द्रसिंह द्वारा बनवाया गया रैन बसेरा और झालरापाटन की कोठी मदन-विलास भी राजस्थान सरकार को प्राप्त हुई।

महाराज हरिश्चन्द्र जी सन १९५७ से १९६६ तक राजस्थान में लोकप्रिय मंत्री रहे। त्याग की भावना में और जनता की सेवा करने में वे अपने पिता और पितामह से भी आगे बढ़ गए। जनसेवा में रातदिन लगे रहने का उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। अपने पिता और पितामह की भाँति उनका भी हृदय-गति रुक जाने से १७ मार्च, १९६७ को नई दिल्ली मे देहावसान हो गया।

उनके दोनों पुत्र महाराज राणा इन्द्रजीतसिंह जी और महाराज महीजीत सिंह जी अपनी वंश परंपरा के अनुसार योग्य, बुद्धिमान और मिलनसार हैं। आज के प्रजातान्त्रिक युग के अनुसार उन्होंने भी अपने पिता की भाँति अपने आप को तैयार किया है। उन्हें भी अपनी संस्कृति से उतना ही प्रेम है। झालावाड़ में साहित्यिक और सास्कृतिक परपराएं आज भी विद्यमान हैं।

* *

भारतीय साहित्यकार संघ

कार्य-विवरण १९७०–७२

दिनाँक १५-३-७० को नवगठित कार्यकारिणी की बैठक मेरठ में हुई। यद्यपि हमारे संयोजकों के सामने अनेक प्रकार की आर्थिक और सैद्धान्तिक कठिनाइयाँ आयीं तथापि उनकी कर्मठता और निष्ठा से कार्य का सुचारु संपादन हुआ और भविष्य में पूर्ण आशा है कि वे दुगने साहस और श्रम से लक्ष्य की ओर बढ़ते जायेंगे।

कार्यक्रमों में, निबन्ध पाठ, विचार गोष्ठी संगोष्ठी, परिचर्या और पत्रिका प्रकाशन मुख्य हैं। भारतीय साहित्यकार संघ की पत्रिका "श्रेय", जिसकी चर्चा कई समीक्षा-पत्रों और समाचार-पत्रों में हो चुकी है, संघ की आकाँक्षा और इसके लक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। तो भी सहस्रों की सुविधा और प्रचार की दृष्टि से संघ के विधान (नियमोपनियम) और उद्देश्य-क्रम को पृथक् से प्रकाशित कर दिया गया है। संघ किसी संकीर्ण विचारधारा पर आधृत नही है। अतः कल्याण और अकल्याण की विवेक-दृष्टि से गोष्ठियों का विषय-चयन किया जाता है। सौभाग्य से हमें अनेक साधु प्रवृत्ति के आचार्यों और विद्वानों का सहयोग मिला और उन्हीं की स्नेहमयी दृष्टि से संचालित होकर मैं कार्य करता हूं। ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसे लोगों की छत्र-छाया मुझे निरंतर मिलती रहे।

मोहनलाल श्रीवास्तव
मुख्य संयोजक

क्रम	दिनाँक	विषय	विशिष्ट पदाधिकारी तथा विषयप्रवर्तक
१	१५-३-७०	साहित्यकार का दायित्व (संगोष्ठी)	उद्घाटन, डा० रामकर्णसिहं (उपकुलपति मेरठ विश्वविधालय) अध्यक्ष डा० रामदत्त भारद्वाज तथा डा० रामप्रकाश अग्रवाल। विषय प्रवर्तक, उपन्यासकार श्री गुरूदत्त।
२.	१०-५-७०	१८५७ की क्राँति की स्मृति काव्य-संध्या (गोष्ठी)	अध्यद्ध आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन, निदेशक, क्षितीश वेदालंकार, संयोजक श्रीकृष्ण मित्र।
३.	२६-६-७०	अमरीका में भारतीय भाषाओं के अध्ययन की स्थिति (संगोष्ठी)	अध्यक्ष, पं० क्षितीश वेदालंकार, विषय प्रवर्तक— डा० वेदप्रकाश वटुक (कैलेफोर्निया स्टेटकॉलेड हेवर्ड में मानविकी के प्राध्यापक तथा एशिया पत्रिका के समीक्षा सम्पादक) संयोजक श्री मोहनलाल श्रीवास्तव
४.	४/५-७-७०	पर्वतीय साहित्य-कला (संगोष्ठी)	उद्घाटन श्री भक्तदर्शन (पूर्व राज्य शिक्षा मन्त्री, भारत) अध्यक्ष श्री बी० आर० टामटा (आई० ए० एस० तथा महामहोपाध्याय परमेश्वरानन्द शास्त्री, संयोजन, मोहनलाल श्रीवास्तव, दे० बलोधी

५.	६-९-७०	ईसाई चिन्तन तथा आचार्य बॅकिम (गोष्ठी)	श्री अश्विनीकुमार वर्मा (कमीशन फार टेकनिकल टरमिनोलोजी संयोजक—श्री मोहनलाल श्रीवास्तव
६.	१९-९-७०	उत्तराखंडीय साहित्य चेतना(गोष्ठी)	विषय प्रवर्तक श्री मोहनलाल श्रीवास्तव संयोजक अ० कु० वर्मा।
७.	७-१०-७०	ईसाई चिन्तन और भारतीय शिक्षा (संगोष्ठी)	वि० प्र० श्री रामगोपाल शास्त्री, सं० श्री मोहन-लाल श्रीवास्तव
८.	७-११-७०	वंदा वैरागी, सिद्धि एवं साध्य	पुस्तक प्रकाशन तथा श्रद्धाँजलि गोष्ठी सं० सुन्दरदास
९.	२५-१२-७०	बैठक तथा विचार	संस्थापक-संयोजक सदस्य भा० सा० सं०
१०	२७-१२-७०	पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वैदिक शब्दों के अनर्गल अर्थ (निबंध-पाठ)	श्री रामगोपाल शास्त्री, सं०—डा० मोहनलाल श्रीवास्तव
११.	१३–२-७१	गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की काव्य साधना	वि० प्र० श्री शैलेन्द्रकुमार पाठक संयोजक डा० मोहनलाल श्रीवास्व
१२.	२५–३-७१	पूर्वी बंगाल की राजनीतिक स्थिति	चाणक्य परिषद्—परिचर्या
१३.	२६/२७-३-७१	वही—	चाणक्य परिषद् की बैठक अध्यक्ष डा० मोहनलाल श्रीवास्तव

१४.	११--४-७१	डेमोक्रेट्सपोल सेट बैंक	चाणक्य परिषद् की बैठक अध्यक्ष श्री गजानन्द एडवोकेट तथा डा० रामप्रसाद मिश्र
१५.	१८--४-७१	बंगाल की स्थिति और भारत सरकार (संगोष्ठी)	अध्यक्ष पं० क्षितीश वेदालंकार
१६.	२५--४-७१	डा० प्रभाकर माचवे अभिनन्दन	अ० डा० रामदत्त भारद्वाज, डा० वेदप्रकाश बटुक, डाक्टर मोहनलाल श्रीवास्तव
१७.	२--५-७१	दि सुपर इगो (नि० प०)	श्री आदर्शवादी भट्टाचार्य
१८.	१६-५-७१	१८५७ की स्मृति में काव्य संध्या	अ० आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन', निदेशक पं० क्षितीश वेदालंकार, सं० सर्वश्री ललितमोहन जोशी, कृष्ण-मित्र, संरक्षक श्री ब्रह्मदत्त शर्मा
१९.	२३--५-७१	पश्चिमोत्तर सीमाप्रन्त (पेशावर, गोहाटी, बन्नू, डेरा इस्माइलखाँ, मरदान, हजारा आदि) पर नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव (परि०)	योगी रामनाथ, सं० डा० मोहनलाल श्रीवास्तव कुंवर भगवानदास, मुन्शी फाजिल, सुन्दरदास, राज-पाल, जयेश आदि

२०.	१--६-७१	अश्विनीकुमार की प्रयोगवादी कवितायें (परि०)	डा० रामप्रसाद मिश्र, डा० मोहनलाल श्रीवास्तव, डा० भूषण, डा० सीताराम सहगल, राजपाल जयेश श्री विनोद बजाज
२१.	२३--७-७१	साधारणीकरण का अर्थभ्रांति (नि० पा०)	डा० रामदत्त भारद्वाज, डा० प्रभाकर 'माचवे', स० डा० मोहनलाल श्रीवास्तव
२२.	१६-१२-७१	कबीर का अवतारवाद	श्री विलियम दवायर, अ० डा० रामदत्त भारद्वाज सं० डा० मोहनलाल श्रीवास्तव
२३.	१६-१२-७१	हिन्दी क्रियाओं का अर्थ परक अध्ययन (शोध संदर्भ)	डा० कृष्णगोपाल रस्तोगी
२४.	२६-१२-७१	सगोत्र सपिंड विवाह (नि०पा०)	आचार्य ब्रह्मदत्त
२५.	१३-१-७२	लोककला के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-कला में निहित प्रतीकों का वैज्ञानिक अध्ययन (नि० पा०)	श्री जोगेन्द्र सक्सेना, अ० श्री हरिदत्त शर्मा, समाचार सं० नवभारत टाइम्स, सं० डा० मोहनलाल श्रीवास्तव

२६.	२२-१-७२	कवि जयेश (श्री राजपाल शास्त्री) की कविता-संग्रह 'श्रेयसी' का विमोचन	अ० श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', विशेष अतिथि डाक्टर पदमसिंह शर्मा 'कमलेश' प्रो० हिन्दी विभाग कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, पं० भगवद्दत्त 'शिशु', श्री क्षितीश वेदालंकार सं० डा० मोहनलाल श्रीवास्तव
२७.	१८-३-७२	कहानी परिचर्या (परि०)	श्री अवधेशकुमार की कहानियों पर विचार
२८.	२५-५-७२	ब्राह्मण साहित्य : एक सैद्धाँतिक तथा साँस्कृतिक अध्ययन	भारतीय साहत्यकार संघ की अनुसंधान परिषद में उक्त विषय के प्रारूप और भूमिका पर विचार अध्यक्ष डा० रामदत्त भारद्वाज, प्रस्तुतकर्ता श्री अश्विनीकुमार वर्मा
२९.	२७-६-७२	कविगोष्ठी	सं० श्री ललितमोहन जोशी
३०.	१६-८-७२	हिन्दी पत्रकारिता के २५ वर्ष, स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती के संदर्भ में (नि० पा० तथा परि०)	अ० श्री विद्याचरण शुक्ल (राज्यमन्त्री), उद्घाटन श्री उमाशंकर दीक्षित (गृहमन्त्री) तथा श्री रतनलाल जोशी (संपादक हिन्दुस्तान) संयोजक श्री क्षितीश वेदालंकार, नि० पा० श्री प्रेमनाथ चतुर्वेदी, संभागी सर्वश्री रणवीर (सम्पादक मिलाप), श्री हरिदत्त शर्मा (सम्पादक नवभारत टाइम्स) राजेन्द्र अवस्थी (कादम्बिनी)

३१.	१३-८-७२	हिन्दी कविता के २५ वर्ष आज की स्थिति में हिन्दी शोध की सम्भावित दिशा में (नि० पा० परि०)	डा० रामप्रसाद डा० रामेश्वर दयालु का निबन्ध, डा० रामदत्त भारद्वाज तथा डा० वेदप्रकाश 'बटूक' सं० डाक्टर मोहनलाल श्रीवास्तव, सम्भागी डा० हरगुलाल, डा० जगदीश भारद्वाज, क्षितीश वेदालंकार, डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल, अश्विनीकुमार वर्मा, आदि
३२.	११-६-७२	जनसंघ का अन्तर्विरोध (परि०)	अश्विनीकुमार वर्मा के सुरक्षित निबन्ध पर परिचर्चा
३३.	३-१२-७२	कृष्णकाव्य में लीला वर्णन (नि० पा०)	डा० जगदीश भारद्वाज 'सम्राट' अ० डा० विजयेन्द्र स्नातक, अध्यक्ष हिन्दीं विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय आचार्य वाग्भव ।

अन्तरंग गोष्ठी

- सौन्दर्य की परिकल्पना—डा० रामदत्त भारद्वाज
- तुलसी सौन्दर्य दृष्टि—डा० मोहनलाल श्रीवास्तव
- भारतीय इतिहास की स्थिति—श्री जगदीशचन्द्र श्रीवास्तव
- पत्रकारिता—अनुसंधान सामग्री—श्री क्षितीश वेदालंकार
- धर्म का स्वरूप—आचार्य अमृत वाग्भव
- विविध परिकल्प एवं विचार -आचार्य अमृत वाग्भव
- चाणक्य—भारतीय राजनीति-दर्शन का परम व्याख्याता—हरिदत्त शर्मा
- भारतीय संत साहित्य—भगवद्दत्त 'शिशु'
- भारतीय इतिहास : समस्या और अनुसंधान—डा० बुद्धप्रकाश
- भारतीय राजनीति की भावी दिशा—श्री गुरुदत्त
- विज्ञान और विज्ञान—श्री गुरुदत्त
- तुलसी-काव्य में चित्रकला—डा० मोहनलाल श्रीवास्तव
- साठोत्तरी हिन्दी कविता—आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'
- शोध की स्थितियाँ—डा० ब्रह्मा भारद्वाज
- कवि और काव्य—डा० रामप्रसाद मिश्र
- श्रेयसी की रचना—श्री राजपाल शास्त्री
- तत्त्व दर्शन—आचार्य अमृत वाग्भव
- राजस्थानी लोककला—श्री जोगेन्द्र सक्सेना
- ब्राह्मण ग्रन्थों में संस्कृति-सूत्र - श्री अश्विनीकुमार वर्मा
- साहित्य और समाज-दृष्टि—आचार्य भुवनेशचन्द्र चतुर्वेदी

ये गोष्ठियाँ अन्तरंग बैठकों में होती रही हैं। इनसे उद्भूत विचार सुरक्षित हैं।

मोहनलाल श्रीवास्तव

श्री गोलवरकर जी

श्री भवानी प्रसाद मिश्र

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री माधव सदाशिव राव गोलवलकर देश की नहीं विश्व की विभूति थे। राजनीति इतिहास, दर्शन और धर्म शास्त्रों में उनकी अबाध गति थी। वे ऐसे मनोमुग्धकारी भाषणकर्त्ता, कर्मरत देशभक्त थे जैसा किसी देश को भाग्य से ही मिलता हैं। संकीर्ण राजनीति से भ्रमित होकर देश ने उनकी प्रतिभा का पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया, यह उनके मरने के बाद सबको महसूस हो रहा हैं। हमारे राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और देश के सभी दलीय तथा अन्य महापुरुषों ने उनके निधन पर जो उद्‌गार प्रकट किये है, उनकी मन पर ऐसी ही छाप पड़ती हैं।

यों गुरुजी का निधन ऐसा अप्रत्याशित नहीं था—वे गत कुछ वर्षों से कैंसर जैसे महारोग से तनिक भी उद्विग्न हुए बिना अपने सारे कर्तव्य निभाते हुए जूझ रहे थे और वे तथा उनके साथी सभी जानते थे कि देश को उनकी सेवाएँ अब दीर्घकाल तक प्राप्त नहीं होंगी। इसीलिए उन्होंने अपना उत्तराधिकारी भी निर्णीत कर दिया था। उन्होंने जाने के पहले एक क्षमा प्रार्थना भी रख छोड़ी थी और उसमें संत तुकाराम के इस अभंग को उद्‌धृत किया था।

शेवरची विन वणी
संतजनी परिसावी
विसर तो न पडावा
माझ्या देवा तुम्हांसीन

अर्थात हे प्रभु मेरी अन्तिम प्रार्थना यह हैं कि संत सदा प्रसन्न रहें और आप मुझे कभी न भुलाये। अवश्य ही गुरुजी के प्रभु जनता जनार्दन है। हमें इस समय संकल्प लेना चाहिए कि भारत की जिस महान् संस्कृति के लिए गुरुजीं रातों दिन चिंतित और तत्पर कार्यरत रहे उसकी ओर हमारी भी दृष्टि जाये इतना ही नही हम उसके संम्पूर्ण महत्व को समझकर उसे उन्नत और सदा प्रगति-प्राण रखने में अपना अंशदान करते हुए किसी से पीछे न रहें।

स्वामित्व और प्रकाशन सम्बन्धी घोषणा

१. प्रकाशन स्थान	५१/१ न्यूमार्केट, करोल बाग, नई दिल्ली-५
२. अवधि	त्रैमासिक
३. मुद्रक तथा प्रकाशन	डा० मोहनलाल श्रीवास्तव
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	५१/१ न्यू मार्केट, करौल बाग, नई दिल्ली-५
४. सम्पादक	डा० रामदत्त भारद्वाज (११/६ शक्तिनगर, दिल्ली) डा० मोहनलाल श्रीवास्तव (क्रम के अनुसार)
५. स्वामित्व	भारतीय साहित्यकार संघ, पंजीकृत संख्या, एस० २५६३

मैं डा० मोहनलाल श्रीवास्तव घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार है।

डा० मोहनलाल श्रीवास्तव

भारत के समाचारपत्र-रजिस्ट्रार द्वारा--पं०सं० (रजि० नं०) १६७७२/७०

विज्ञापन दर

अन्तिम पृष्ठ	सम्पूर्ण	२५० रु०
,, ,,	अर्धांश	१२५ रु०
भीतरी पृष्ठ	सम्पूर्ण	२०० रु०
,, ,,	अर्धांश	१०० रु०
,, ,,	चतुर्थांश	५० रु०

विशेष स्थिति में पत्रिका की प्रबन्ध समिति को विज्ञापन की दरों में आवश्यक परिवर्तन करने का अधिकार है। यह पत्रिका भारत के सुशिक्षित परिवारों, शिक्षा संस्थाओं और प्रबुद्ध जीवियों की पत्रिका है। अतएव इसमें प्रकाशित विज्ञापन का विशेष महत्व बढ़ जाता है। आशा है कि विज्ञापनदाता इनमें विज्ञापन देकर अवश्य लाभ उठाएंगे।

राजपाल शास्त्री लक्ष्मीकान्त 'मुक्त'
प्रबन्धक

भारतीय साहित्यकार संघ की ओर से डा० मोहनलाल श्रीवास्तव द्वारा
राष्ट्रीय प्रिंटिंग प्रेस त्रिनगर में मुद्रित
तथा ५१/१ न्यू मार्केट, करौल बाग, नई दिल्ली-५ से प्रकाशित।